राष्ट्रीयता पर प्रहार रोका जाय

सं०
८४

हिन्दू समाज आत्मनिरीक्षण करे !

धर्मो रक्षति रक्षितः।

ॐ

ले०:- डा० के० पी० अग्रव

क ठोस

ाष्ट्र का
भावना
ाहक धरो-

विश्व हिन्दू परिषद [उ० प्र०]

प्रस्तावना

अंग्रेजी दैनिक 'पायनियर' के प्रबन्ध संपादक तथा हिन्दी दैनिक 'स्वतंत्र भारत' के मुख्य संपादक डा० कृष्ण प्रकाश अग्रवाल एक वरिष्ठ पत्रकार, विचारक एवं चिंतक हैं। आपके लेख और सम्पादकीय राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना के संदेश-वाहक होते हैं तथा सुरुचिपूर्वक पढ़े जाते हैं। हाल ही में प्रकाशित आप की कई लेखमालायें तथा संपादकीय विश्व राजनीति की शतरंजी चालों को समझने तथा देश की समस्याओं का सही मूल्यांकन करने में विशेष महत्व के हैं। हम इन का संकलन कर पुस्तक रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। प्रकाशन के लिए हम 'स्वतंत्र भारत' दैनिक के आभारी है।

जगदम्बा प्रसाद वर्मा
प्रचार मंत्री, विश्व हिन्दू परिषद उ०प्र०

संदर्भ :

स्वतन्त्र भारत

जुलाई २६—२८, १९८१	'राष्ट्रीयता पर प्रहार रोका जाय'
अगस्त १८—२१, १९८१	'हिन्दू समाज आत्म निरीक्षण करे'
गस्त ३०, १९८१	'राष्ट्र को धर्मशाला न बनने दे'
म्बर २४—२७, १९८१	'विश्व तनाव के मूल में ऐतिहासिक शत्रुताएं,

क:–विश्व हिन्दू परिषद [उ० प्र०] प्रकाशन
५३८/६३ शिवरानी नगर, सीतापुर मार्ग, लखनऊ–७

मूल्य १/-

ublic Domain. y IKS-MoE

आमुख

यदि राष्ट्र के नागरिक अपने राष्ट्र के प्रति पूर्ण निष्ठावान हों तो कोई भी राष्ट्र अपनी समस्याओं के समाधान के लिए साहस और विश्वास से कदम उठा सकता है परन्तु यदि राष्ट्र के नागरिकों में ही अविश्वास और तनाव हो तो राष्ट्र का मनोबल क्षीण होने लगता है। आज भारत खंड खंड बंट रहा है। बहुसंख्यक और अल्प संख्यकों के बीच में साम्प्रदायिकता का विष उफन रहा है। मीनाक्षीपुरम् और रामनाथपुरम् के सामूहिक धर्मान्तरण, साम्प्रदायिक दंगे, आज पूरे समाज को आंदोलित कर रहे हैं और समाज के बारे में नये सिरे से सोचने की चुनौती दे रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों के लिये दोषी कौन है, स्वतन्त्रता के चौंतीस वर्षों में यह इतनी विस्फोटक समस्याय क्यों उभर आयीं हैं, इसका समाधान क्या है। समस्याय इतनी भयावह हैं कि यदि तुरन्त निदान न किया गया तो राष्ट्र हिंसा की भयानक लपटों से घिर सकता है।

समस्याओं का सही निष्पक्ष विश्लेषण समाधान का प्रथम महत्वपूर्ण कदम होता है। इस पुस्तिका में संकलित लेख इन्हीं समस्याओं को उठाते हैं, उनका सही निर्भीक, निष्पक्ष, विश्लेषण करते हैं, तथा इन समस्याओं को देखने व परखने का सही दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं। यह सारे लेख 'स्वतन्त्र भारत' के पिछले अंकों में प्रकाशित हुए हैं। इन लेखों के प्रकाशन के बाद डाक्टर के. पी. अग्रवाल के पास निर्भीक लेखन के लिए बधाइयों का तांता लग गया था। इन बहुचर्चित लेखों में डाक्टर अग्रवाल ने समस्याओं का स्वस्थ संतुलित विश्लेषण किया है तथा राष्ट्रीय हित की दष्टि से एक अत्यन्त विषम स्थिति को सुलझाने में सहायक ठोस सुझाव दिये हैं।

डाक्टर अग्रवाल के इस मत से सभी सहमत होंगे कि एक राष्ट्र का निर्माण इस भूखण्ड में रहने वाले निवासियों की सामूहिक सहयोग भावना से होता है, जो एकजुट हाकर अपनी सभ्यता संस्कृति की सामूहिक धरो-

हर को सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। इन लेखों में लेखक ने भारत की इसी मूल समस्या को उठाया है कि भारत में बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों में विरोध और तनाव बढ़ रहा है। धर्मान्तरण के मूल मुद्दे क्या हैं, अल्पसंख्यकों का उत्तरदायित्व क्या है, तथा राजनीतिक नेताओं को क्या कदम उठाने चाहिये।

भारतीय समाज की समस्याओं का प्रमुख कारण तो हमारे राजनीतिक नेताओं की स्वार्थपूर्ण नीतियाँ है जो वोटों के थोक व्यापार के लिये अल्पसंख्यकों के साथ लज्जाहीन सौदेबाजी कर रहे हैं। वोटों के लालच के कारण राजनीतिक दल अनुचित दबाव डालकर बड़े से बड़े अपराध को दबाकर प्रशासन और पुलिस व्यवस्था को ठप्प कर रहे हैं। दस प्रतिशत संगठित मुस्लिम वोटों के लिये यह राजनीतिज्ञ धर्म-निरपेक्षता की आड़ में साम्प्रदायिकता का जहर राष्ट्र की नस नस में भर रहे हैं।

भारत के अल्पसंख्यकों का दुर्भाग्य यह रहा है कि उनके अपने नेताओं ने उन्हें कभी राष्ट्रीय धारा से एक रूप होने की प्रेरणा नहीं दी। मुसलमानों को सोचना होगा कि राष्ट्रीय धारा से कट कर केवल पुलिस या राज्य का संरक्षण प्राप्त करने की अपेक्षा उन्हें बहुसंख्यक समाज की सदभावना प्राप्त करनी चाहिये। साम्प्रदायिक आधार पर नौकरियों में आरक्षण की मांग, उर्दू भाषा की मांग, भारत में रह कर भीं निष्ठायें—दूसरे देशों की ओर, पेट्रोडालर के बल पर बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यक में बदलने का प्रयत्न राष्ट्र के प्रति द्रोह है। विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों को नेता मानना, परिवार नियोजन न स्वीकार करना, यह सब मुसलमानों को राष्ट्रीय धारा से काट रहे हैं। इस देश के अधिकांश मुस्लिम एवं ईसाई धर्मावलम्बी नागरिक राष्ट्र व्यापी परिवार नियोजन के कार्यक्रम में सहयोग नहीं करते, इसका सीधा अर्थ यह है कि यह नागरिक देश के इस जीवन मरण के प्रश्न पर अपना नागरिक कर्त्तव्य निभाने को तैयार नहीं। जहां

भी मुस्लिम या ईसाई-बहुल प्रांत बन जाते हैं वे भारत से पृथक होने की मांग करते हैं। इन अल्पसंख्यकों को सोचना होगा यदि हिन्दू धर्मनिरपेक्ष न होता तो अल्पसंख्यकों को १९४७ के उपरान्त समान अवसर और समान अधिकार न मिले होते। ९५ प्रतिशत हिन्दू प्रतिनिधित्व वाली संविधान सभा ने मुसलमानों को समान संवैधानिक अधिकार दिये। २% आंग्ल भारतियों के हितों का संरक्षण किया, ईसाई मिशनरियों को यहां टिकने की सुविधायें दीं। विश्व के किस अन्य बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने अल्पसंख्यकों की इतनी चिंता की है? विश्व के किसी भी अन्य देश ने, स्वयं इस्लामी राष्ट्रों ने भी, अपने अल्संख्यकों को इतने अधिकार नहीं दिये। पाकिस्तान और बंगला देश के उदाहरण तो हमारे अगल बगल ही है। मुसलमानों को यह समझना होगा कि भारत से बाहर देखने का कोई लाभ नहीं है, स्वयं पाकिस्तान में बिहारी मुसलमानों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है, तो क्या भारत के मुसलमानों को किसी अन्य देश में समान अधिकार मिलेंगे? कदापि नहीं। उन्हें भारत की सांस्कृतिक विरासत को अपनत्व देना ही चाहिए और ऐसी काई मांग नहीं करनी चाहिए जो राष्ट्र के हितों में बाधक हो। साप्रम्दायिक आधार पर नौकरियों में आरक्षण की मांग राष्ट्र के मूल सिद्धांत को ही नष्ट करती है। उर्दू भाषा देश के विभाजन के साथ जुड़ी है।

भारत का अल्पसंख्यक भ्रमित है। पर बहुसंख्यक का क्या उत्तरदायित्व है। उसे भी स्वीकार करना होगा, कि भारत अकेला हिन्दुओं का नहीं है। हमें अपना आत्मनिरीक्षण करना होगा और अल्पसंख्यकों से सौहार्द भावना रखनी होगी। पर इसके लिये भी जागरूक रहना होगा कि राष्ट्रीय हित की हानि न हो। हिन्दू समाज को अपनी आन्तरिक विसंगतियों को भी दूर करना होगा। हमारे यहां जाति जन्म से नहीं, कर्म से स्वीकृत थी। राजनीतिक, सामाजिक अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में शूद्रों का समान स्थान था। महाभारत के शान्ति पर्व में मंत्रि-परिषद के गठन में यदि आठ ब्राह्मण लिये जाने हैं तो आठ शूद्रों को भी लिये जाने का विधान है। अध्यात्मिक

क्षेत्र में तो छुआछूत को कभी मान्यता नहीं दी गयी। मीरा रैदास के चरणों में बैठो तो भक्ति काल में अस्सी प्रतिशत गैर ब्राह्मण सँतों ने ही भक्ति धारा प्रवाहित करके हिन्दु समाज की रक्षा की। हमें तो इसका गर्व-होना चाहिये कि संवैधानिक अधिकार के रूप में छुआछूत को अन्त करने का साहस हमने जुटाया।

ठीक है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि व्यावहारिक धरातल पर आज भी हरिजनों के प्रति भेदभाव बरता जाता है। पर कौन सा ऐसा राष्ट्र है, या धर्म है, जहां दलित एवं पीड़ित लोगों की समस्या न हो। प्रजा-तन्त्र का दम्भ करने वाले अमेरिका, पश्चिमी योरोप तथा स्वयं इंग्लैंड में नीगरो, दलित ईसाइयों और काले गोरों की समस्या है। अरब देश, ईरान, सीरिया और सभी मुस्लिम राष्ट्रों में शिया सुन्नी इस्माइली और अहमदियों के प्रश्न हैं। इस्माइलियों को तो लम्बे काल तक शिया सुन्नी उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा। इसका यह अर्थ नहीं कि हिन्दू छआछूत का अन्त न करें। पर हिन्दू समाज को इस मुद्दे को लेकर हीनभावना से ग्रसित होने का कोई कारण नहीं है। इस आत्मघाती आत्मकुंठा से उबर कर हमें अपना मनोबल ऊंचा करना होगा कि हम छुआछुत को मिटा कर ही दम लेंगे। इस समस्या को हम अन्य देशों की अपेक्षा अधिक अच्छी प्रकार से सुलझाने का प्रयत्न करेंगे। अल्पसंख्यक हमारी कमजोरी का लाभ न उठा पायें अतः धर्म विरोधी, शास्त्र विरोधी, तथा मानवता विरोधी प्रथाओं को हमें पूर्ण रूप से त्यागना होगा।

यदि सवर्णों को स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाना चाहिए तो अन्त्यज हिंदू जातियों को भी अपना रोष धर्मान्तरण करके व्यक्त नहीं करना चाहिए। यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जानी चाहिए कि धर्मन्तिरण करके उन्हीं की स्थिति डांवाडोल होती है। मुसलमान या ईसाइयों का मुख्य उद्देश्य अपनी संख्या बढ़ाना है, हरिजनों का भला करना नहीं। वे

धर्म परिवर्तन इन जातियों की भलाई के लिये नहीं, वरन् स्वयं अपने लिये स्वर्ग का दरवाजा खुलवाने के लिये करते हैं, क्योंकि इन दोनों धर्मों में काफिरों को अपने धर्म में मिलाना स्वर्ग प्राप्ति का श्रेष्ठ उपाय है। इसके पीछे गम्भीर दूरगामी परिणामों का राजनीतिक षड़यन्त्र भी है। हां धर्म, संविधान और कानून से जो अधिकार प्राप्त हैं इनकी मांग दृढ़ता पूर्वक करनी चाहिए। आज हिन्दू समाज छुआछूत को नष्ट करने के लिये मानसिक रूप से तैयार हो चुका है। सवर्णो का बहुत बड़ा समुदाय हरिजनों को पूर्ण समानता देने के पक्ष में है। हरिजनों को बहकावे से बच कर अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग होना चाहिए। क्योंकि ईसाई या मुसलमान धर्म परिवर्तन करने के बाद भी समान अधिकार नहीं देते। ईसाइयों और मुसलमानों में भी जातियां हैं, ऊंच-नीच का भेदभाव है और भयंकर जातीय कटुता है। शिया सुन्नी और प्रोटेस्टन्ट और कथालिकों के संघर्ष सर्व विदित हैं।

हमारे राजनीतिक नेताओं को देखना होगा कि धर्म परिवर्तन धर्म निरपेक्षता की नीति न होकर एक राजनीतिक षड़यंत्र है। भारत विश्व का एक अग्रणी देश है, प्रगति के पथ पर है, ईसाई और मुस्लिम राष्ट्र इसमें दरारे डालने का प्रयत्न कर रहे हैं। मदर टरेसा सी ईसाई मिशनरी महिला का नकाब भी तब उतर जाता है जब वह त्यागी के धर्म स्वतन्त्र बिल का विरोध करती है। राजनीतिक दल धर्म निरपेक्षता के नाम पर सांप्रदायिकता को बढ़ावा न दें। राष्ट्रीय नेताओं का पहला कर्त्तव्य अपने देश की वाह्य आक्रमणों से रक्षा करना होता है पर यदि भारत का कोई समुदाय अपनी संख्या येन केन प्रकारेण बढ़ा कर पृथकतावादी मांग रखता है तो वह भी राष्ट्र का उतना ही शत्रु है। सरकार को इन आन्तरिक शत्रुओं के प्रति जागरूक रहना है इन अंतरिक शत्रुओं के कारण ही असम, पश्चिम बंगाल, नागालैंड, मिजारोम जैसी समस्याय उभर रही हैं।

प्रतिवर्ष हमारे देश में अरबों रूपया ईसाई मिशनरियों तथा मुसल-

मान मुल्ला मोलवियों को बाहर से आ रहा है। इस धन का प्रयोग धर्म परिवर्तन कर भारत में अव्यवस्था बढ़ाना, अपने पिट्ठुओं की संख्या बढ़ाना, पंचमागियों को तैयार करना तथा छापामार पद्धति से अपने उद्देश्य पूरे करना है। राजनीतिज्ञ इस आंतरिक कुचाल को समझें, आत्मघाती प्रवृत्ति के शिकार न बनें। सरकार को कठोरता से इस गंदे धन को प्रतिबन्धित करना चाहिये। भारतीय शासन नेताओं को एक बात और समझनी होगी कि आज धर्म परिवर्तन की सम्भावनायें अन्य देशों में बहुत कम हैं। किसी भी साम्यवादी, ईसाई या मुस्लिम देश में इसकी संभावना नहीं है।

इस प्रकार यह लेख हमारे राष्ट्र के उन प्रश्नों को उठाते हैं जिन पर विचार विमर्श करने से प्रत्येक नागरिक इसलिये कतराता था कि उसे साम्प्रदायिक न करार कर दिया जाये। पर इस चुनौती को डाक्टर अग्रवाल ने स्वीकार किया, उसका सम्यक विश्लेषण किया, साथ ही रचनात्मक भले ही वे अप्रिय लगें, ऐसे सुझाव, अल्पसंख्यको और बहुसंख्यकों को उन्होंने दिये हैं। स्पष्ट चेतावनी है कि राष्ट्र की संकट घड़ी में हम सत्य को नकारे नहीं। हमारी समस्या का समाधान सत्य को स्वीकार करने में ही है। कलम की शक्ति तलवार से तभी पैनी होती है जब वह सत्य के पक्ष का उठाती है और सत्य के पक्ष को उठाना साहस पूर्ण निर्भीक आत्मनिष्ठा का काम है। इसके लिए लेखक हार्दिक बधाई का पात्र है।

यह लेख हमें चिंतन मनन और कर्म की प्रेरणा दे और राष्ट्र की एकता एवं स्थिरता बनाये रखने में हमारा मार्ग प्रशस्त करें इसी हेतु लेखों को दैनिक समाचार पत्र के पन्नों की सचल अल्पावधि से उठाकर पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

डा० शान्तिदेव बाला
उपाध्यक्षा
विश्व हिन्दू परिषद उ० प्र०

कर्मशीलगुणाः पूज्यास्तथा जातिकुले नहिं ।
न जात्या न कुलेनैव श्रेष्ठस्त्वं प्रतिपद्यते ॥

—शुक्रनीति

हिन्दवः
सोदराः
सर्वे

धर्मो रक्षति रक्षितः

उसी चैतन्य परब्रह्म परमात्मा का अंश मैं हूं, यह जिस ज्ञानी की बुद्धि है वह चाण्डाल भले ही हो मेरा गुरू है।

जगद्‌गुरू आद्य शंकराचार्य

हरिजन हिन्दू समाज के अभिन्न अंग हैं। उनमें किसी प्रकार अस्पृश्यता का व्यवहार अवांछनीय है।

स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ
जगदगुरू शंकराचार्य, द्वारिका पीठम्
वि० हि० प० जम्मू सम्मेलन

राष्ट्रीयता पर प्रहार रोका जाय

अल्प संख्यकों के नाम पर

पिछले कुछ चुनावों के समय से जिस प्रकार देश के राजनीतिक दल तथा कुछ स्वार्थी तत्व अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों के हितों की, बातें कर जो वाद-विवाद खड़ा कर रहे हैं, उससे अल्पसंख्यकों में न पूरी की जा सकने वाली एवं असम्भव सी आशायें जागृत कर एक तनावपूर्ण स्थिति देश में उभरती जा रही है। इसके भावी दुष्परिणाम क्या होंगे यह आज कहना कठिन है, किन्तु एक बात निश्चित है कि इसमें न तो राष्ट्र का हित निहित है और न अल्पसंख्यकों का ही। यह एक व्यावहारिक एवं ऐतिहासिक कटु सत्य है कि किसी भी विशाल राष्ट्र के अल्पसंख्यक इसलिए सुरक्षित नहीं होते कि उन्हें सेना या पुलिस का संरक्षण प्राप्त है या कुछ राजनींतिक दल या नेता बढ़-बढ़ कर उनके हितचिंतक होने का दावा करते हैं। सत्य तो यह है कि अल्पसंख्यक इसलिए सुरक्षित रहते हैं कि उस राष्ट्र का बहुसंख्यक समुदाय उन्हें अपना ही अंग समझता है और उनके प्रति सद्भावना रखता है। यदि इस सद्भावना को आघात पहुंचाया गया तो निश्चय ही देश के राजनीतिक दल या सरकारें कितने भी कानून बनाते रहें, कितने ही प्रस्ताव पास करते रहें, अल्पसंख्यकों एवं देश के हितों की सुरक्षा नहीं की जा सकेगी।

यह भी उतना ही कटु ऐतिहासिक सत्य है कि राष्ट्रों का निर्माण न केवल एक धर्म, एक जाति, एक संस्कृति एवं सभ्यता के होने से होता है और न एक भाषा, रींति रिवाज एवं रंग-रूप होने से। न यह सब मिलकर ही एक राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। यह केवल राष्ट्र निर्माण के सहायक उपकरण हैं। यदि धर्म के नाम पर राष्ट्र बनते होते तो आज

विश्व में केवल चार-पाँच ही प्रमुख राष्ट्र होते। यदि धर्म, संस्कृति सभ्यता मिलकर राष्ट्र का निर्माण करते होता तो समस्त अरब जगत एवं हिन्द चीन के प्रदेशों में एक ही राष्ट्र हाते। यही नहीं उद्योग, सम्पत्ति, एवं शिक्षा की दृष्टि से विश्व में सबसे आगे बढ़े हुए पश्चिमी यूरोपीय देशों का भी एक ही राष्ट्र होता। सैकड़ों सालों से ये पश्चिमी यूरोपीय देश रोमन साम्राज्य को पुनः जीवित करने का स्वप्न देखते रहे हैं। किन्तु अथक प्रयास के बाद पाया है केवल अविश्वासयुक्त एक आर्थिक समुदाय।

इससे भी बढ़कर दक्षिण अमरीका जैसे बड़े विशाल देश जहाँ जिनके धर्म, संस्कृति, सभ्यता, भाषा एवं रीति–रिवाज एक हैं, अपना एक राष्ट्र नहीं बना सके। यही नहीं शताब्दियों के विदेशी शासन के बावजूद संसार के अनेक क्षेत्रों के कई देश, समान धर्म और संस्कृति आदि होते हुए भी एक राष्ट्र होने का स्वप्न साकार न कर सके। अरब देशों एवं पूर्वी यूरोप के बालकन क्षेत्र के ६ देशों पर तुर्की का लगभग ३०० वर्षों तक एकक्षत्र राज्य रहा है फिर भी इनके अन्दर एक राष्ट्र की भावना जाग्रत नहीं हो सकी।

धर्म के नाम पर राष्ट्र की कल्पना आज एक हास्यास्पद सी बात है। आज भारत में रहने वाला शिया मुसलमान सौ बार सोचेगा कि वह सऊदी अरब या पाकिस्तान में जाकर बसे या नहीं। इसी प्रकार आज एक सुन्नी मुसलमान ईरान में बसने से उसी प्रकार हिचकेगा जैसे एक प्रोटेस्टैंट ईसाई आयरलैंड में बसने में हिचकता है। राष्ट्रों का निर्माण एक भूखण्ड में रहने वाले निवासियों के उस सामूहिक भावना से होता है जिसके अन्तर्गत वे अपने देश की परम्परागत, सभ्यता, संस्कृति एवं अपने पूर्वजों के सुख-दुख एवं जीवन मूल्यों को अपनी सामूहिक धरोहर मानते हैं और आने वाले भविष्य को, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, समान रूप से अपना

ही मानें। विश्व का कोई भी राष्ट्र क्यों न हो, यदि उसका कोई भी समुदाय अपनी राष्ट्रीय परम्परा से अपने को अलग मानेगा या इसके मूलभूत सिद्धांत में कोई भेद पैदा करना चाहेगा तो निश्चय ही वह राष्ट्र में विष के बीज बो देगा। भारत में धर्म, भाषा, रंग-रूप इसमें कभी भी बाधा के रूप में नहीं आये।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि राष्ट्रीयता के इस मूल सिद्धांत को न समझने के कारण आज देश में एक चलन सा हो गया है कि बड़े से बड़ा नेता आज बात-बात में यह दर्शाता है कि इस देश में विभिन्नता में एकता है। मानों कि अत्यन्त विभिन्न समुदायों को कोई अदृश्य सूत्र इस देश कों बांधे हुए है। किन्तु यदि हम ध्यान से देखें तो बात बिल्कुल इसके विपरीत है। यदि मूलतः वस्तुओं के गुण विपरीत हैं तो कोई भी शक्ति उन्हें एक नहीं कर सकती। वास्तविक तथ्य तो यह है कि जिस प्रकार एक शरीर परस्पर विभिन्न अंगों के रूप में दिखता है, उसी प्रकार यह प्राचीन भारत देश अपनी विभिन्न बोलियों, रंग-रूप और रीति-रिवाजों में उसी प्रकार विकसित हुआ है, जिस प्रकार बज्र के समान दृढ़ तराशा हुआ हीरा अपने विभिन्न रंगों की प्रभा को फैलाता हुआ सबको लुभा लेता है। इसी मूलभूत एकता के कारण ही स्वतंत्रता के बाद के दिनों में देश पर कोई विपदा आई तो सारा राष्ट्र एक भावना से उसका सामना करने को उठा और सभी क्षेत्रों एवं धर्मों के लोगों ने इसमें योगदान दिया। यही कारण है कि पिछले चुनावों में क्षेत्रीयता और जातिवाद के आधार पर चुनाव लड़ने वाली पार्टियाँ राष्ट्रीय भावना के आगे बुरी तरह से पराजित हुईं।

ऊपर दिये हुए उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि समुदाय विशेष की समस्याओं को राष्ट्र की समस्या से अलग करके रखा गया या राष्ट्रीय भावनाओं के विरोध में रखा गया, तो यह बात सर्वथा देश हित के विरुद्ध होगी। अल्पसंख्यक मुसलमान समुदाय के लोगों को यह

गम्भीरता से सोचना चाहिए कि धर्म के आधार पर देश विभाजन के बाद भी यह कैसे संभव हुआ कि भारत में इतनी बड़ी संख्या में मुसलमान रहे। इसके दो ही कारण हैं। पहला यह कि ८८ प्रतिशत हिन्दू समुदाय ने उन्हें देश से निकालने की बात तो दूर रही, उनके यहाँ रहने का स्वागत किया। दूसरी उससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि यहाँ रहने का निर्णय करने वाले मुसलमानों को विश्वास था कि यह देश उनका अपना देश है और बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय उनको स्नेह और आदर देगा। यह आश्वासन केवल मौखिक नहीं था। ९५ प्रतिशत हिन्दू प्रतिनिधित्व वाली संविधान सभा ने मुसलमानों एवं सभी देशवासियों को समान अधिकार दिए। यह हम सभी जानते हैं कि आज विश्व में काई भी ऐसा इस्लामी देश नहीं है जहाँ अल्पसंख्यकों को इस प्रकार का अधिकार मिला हो। यहां तक कि प्रजातंत्र का दम भरने वाले पश्चिमी एवं अमरीका के देशों में भी कहीं रंग के नाम पर, कहीं धर्म के नाम पर; अल्पसंख्यक समुदाय देश के सर्वांगीण जीवन में भाग नहीं ले सकता। आज इंगलैंड जैसे सांसदीय व्यवस्था वाले देश में जिस रूप में अल्पसंख्यकों का मामला उठ खड़ा हुआ है, उससे हमें यह सबक लेना चाहिए कि हम अपने देश में अल्पसंख्यकों के नाम पर अलगाव की घातक प्रवृत्ति को किसी प्रकार का प्रोत्साहन न दें।

अल्पसंख्यकों के वोटों का थोक व्यापार

सभी पुराने लोग जिन्होंने आजादी की लड़ाई का समय देखा है, उन्हें भलीभांति मालूम है कि किस प्रकार श्री जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के हितों की रक्षा के नाम पर देश के विभाजन की मांग उठाई । इसी मांग के साथ—साथ देश में साम्प्रदायिक दंगे जोर पकड़ते चले गये एवं देश भर में एक जहरीला वातावरण फैल गया । अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने अपना मतलब साधने के लिये इसको हवा दी । दुष्परिणाम यह हुआ कि द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होते—होते १९४६—४७ में यह साम्प्रदायिक दंगे कुछ प्रान्तों में विशाल नरसंहार के रूप में बदल गये । लाखों—लाखों निरीह लोगों की जानें गईं । अरबों की संपत्ति लूटी और फ़ूकी गई । करोड़ों लोग अपने सदियों पुराने घरों को छोड़कर विस्थापित हो गये । अन्ततः देश को मजबूर होकर दुखद विभाजन स्वीकार करना पड़ा ।

किन्तु लगता है कि मानव अपनी मूर्खता भी दोहराता है और ऐतिहासिक तथ्यों की ओर से जानबूझ कर आंखें बन्द कर लेता है । आज भी भारत के सभी प्रमुख राजनीतिक दल, जानबूझ कर न सही, परन्तु अपनी सत्ता—लोलुपता में अंधे होकर, श्री जिन्ना द्वारा दिखाये गये मार्ग का मानो अनुसरण कर रहे हैं । सत्ता के मद ने उनको राष्ट्रहित के प्रति इतना अंधा बना दिया है कि अब वे हर हालत में सत्ता से चिपके रहने के लिए अल्पसंख्यकों को अवांछनीय एवं गलत प्रलोभन दिखा कर उनके वोटों का थोक व्यापार कर रहे हैं । पार्टियों में परस्पर होड़ के कारण अब यह वोटों का थोक व्यापार एक लज्जाहीन सौदेबाजी में परिवर्तित होता जा रहा है । यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात हैं कि इन राजनी-

तिक दलों की चालों को देखते हुए भी मुसलमानों के कुछ स्वार्थी अगुआ लाग एवं कुछ पार्टियाँ भोली–भाली मुसलमान जनता को गुमराह करते हुए इस सौदेबाजी में शामिल हैं। इसका परिणाम सारी जनता के सामने है। जिस समय देश का विभाजन हुआ था उसके पश्चात भारतवर्ष में लोगों ने पिछले २० सालों की भयानक कटुता को भुला कर पारस्परिक सद्भाव से रहना शुरू कर दिया था और लगभग पंद्रह–बीस वर्षों तक साम्प्रदायिक दंगे बड़े पैमाने पर नहीं हुए। लेकिन जिस प्रकार इधर पिछले दस वर्षों से साम्प्रदायिक दंगों का जो एक व्यापक और संगठित रूप सामने आया है तथा जान और माल की भारी हानि हो रही है उससे यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि इन राजनीतिक दलों की अल्पसंख्यकों के वोटों की खरीदारी अपना रंग ला रही है। इस रंग के पीछे देश का भावी अंधकार भी दिखाई दे रहा है। दंगा करवाने वालों को खुले रूप से राजनीतिक पनाह मिल रही है तथा दंगाई नेता ऊंचे पद पा रहे हैं। वोटों के लालच के कारण राजनीतिक दलों ने अनुचित दबाव के द्वारा प्रशासन एवं पुलिस को असहाय सा बना दिया है और वे कोई भी प्रभावशाली कदम उठाने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं।

उर्दू भाषा

आज चाहेउर्दू भाषा की मांग हो या नौकरियों में आरक्षण की या पृथक शिक्षण संस्थाओं की निश्चय ही राष्ट्रीय भावना जागृत करने में बाधक हैं। ये बातें राष्ट्रीयता पर कुठाराघात होंगी बल्कि एक ऐसा षड़यंत्र साबित हागी जिनके कारण वे देश में रहने वाले मुसलमानों को राष्ट्रीय धारा में मिलने में बाधक होंगी। इस बात का यदि कोई मुसलमान नेता विरोध करता है तो उसे यह कहकर दबा दिया जाता है कि वे मुसलमानों के प्रतिनिधि नहीं हैं और यदि कोई हिन्दू कहता है तो उस पर साम्प्रदायिक होने का इलजाम लगाकर चप करा दिया जाता है। किन्तु सत्य बात हमेशा दबाई नहीं जा सकती।

यह बात सभी जानते हैं कि राष्ट्र–भाषा ऊपर से बनाकर लादी नहीं जाती। वह तो जनमानस से उत्पन्न होती है और राष्ट्रभाषा का स्तर उसे जनता के अनुमोदन से ही मिलता है। आज स्वतन्त्रता के ३४ वर्षों बाद भी हिंदी ही पूरी तौर से शासन की भाषा हिन्दी राज्यों में ही नहीं बन सकी तो यह सोचना कि उर्दू शासन की भाषा स्वीकार हो जाय, एक बिडंबना मात्र है। आज भारत के प्रत्येक राज्य में अपनी–अपनी क्षेत्रीय भाषाएं भी सबल रूप से मौजूद हैं और वहां पर रहने वाले मुसलमान उन्हीं प्रदेशीय भाषाओं को बोलते हैं तथा उनमें कार्य करते हैं चाहे वे बंगाली हो, या तमिल, मलयाली या मराठी फिर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जब हिन्दी राज्यों में ही आज कुछ बड़े शहरों को छाड़ कर जन सामान्य जिसमें मुसलमान भी शामिल हैं या तो स्थानीय हिन्दी बोली बालते हैं, या खड़ी बोली के नाम से प्रचलित हिन्दी, वहाँ आज उर्दू का प्रश्न इस प्रबलता से उठाना केवल दुर्भाग्यपूर्ण ही नहीं, बल्कि आने वाले समय में अनिष्टकारी भी है। भारत में उर्दू का अपना एक सुनिश्चित स्थान है। उसकी अपनी एक साहित्यिक मधुरता है और इस रूप में आज वह आदर भी पा रही है। परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ ऐतिहासिक घटनाएं भी हो गयी जिनके कारण भारत में उर्दू बहुसंख्यक जनता को अप्रिय हा गयी है। उसका मुख्य कारण तो यही है कि इसका सीधा संबंध देश के विभाजन से है और यह पाकिस्तान की राज्यभाषा है। यही नहीं, इस उर्दू भाषा के मुद्दे ने ही स्वयं पाकिस्तान को भी भारी कत्लेआम द्वारा दो भागों में बंटने पर मजबूर कर दिया। इस प्रकार उर्दू जहां भी राजनीतिक मुद्दा बनी वहीं, कुछ स्वार्थी तत्व इसे केवल अलगाव के ही शस्त्र के रूप में इस्तेमाल करने लगते हैं। उसको एक राजनीतिक बाना देकर समाज पर लादने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह स्वीकार नहीं होगा।

आरक्षण

साम्प्रदायिक आधार पर नौकरियों में आरक्षण की बात को राष्ट्र विरोधी

कहा जाय तो अनुचित न होगा। आरक्षण की नीति एक राष्ट्र के मूल सिद्धांत को ही समाप्त कर देती है। क्या फौज और पुलिस में मुसलमानों का एक निश्चित प्रतिशत भर्ती करने का अर्थ यह है कि हिन्दू सिपाही हिन्दुओं की ही रक्षा करे और मुसलमानों पर गोली बरसाए और मुसलमान सिपाही केवल मुसलमानों की ही रक्षा करे और हिन्दुओं पर गोली बरसाएगा? इस प्रकार का आरक्षण सेना और पुलिस में भी साम्प्रदायिकता का जहर घोल देगा और आरक्षण के उद्देश्य को ही समाप्त कर देगा। कल कट्टर शिया या सुन्नी भी यह मांग रख सकता है कि उसके संरक्षण के लिए अलग—अलग व्यवस्था की जाय। इस प्रकार पुलिस और फौज में आरक्षण को अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का आधार मानना भ्रमपूर्ण एवं जनता को केवल बेवकूफ बनाने का प्रयास है। जैसा कि मैंने पूर्व में कहा कि किसी विशाल राष्ट्र में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा उसके बहुसंख्यक निवासियों की सद्भावना पर निर्भर होती है और आज भी हमें यह मानना पड़ेगा कि देश में यह सद्भावना मौजूद है। प्रयत्न यह होना चाहिये कि इस सद्भावना को दढ़ किया जाय न कि श्री जिन्ना द्वारा दिखाये गये रास्ते पर चला जाय। अलगाव की बात एक बार जब शुरू होती है तो यह कोई नहीं कह सकता कि इसका अंत कहां और कैसे होगा?

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए आज सभी राजनीतिक पार्टियों का यह प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे ऐसी आचार संहिता बनाएं जिसमें साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देनें वाले वायदे चुनाव का मुद्दा न बन सकें। देश को यह भी देखना पड़ेगा कि क्या चुनाव कानून में इस प्रकार का सुधार किया जा सकता है कि जो राजनीतिक पार्टी किसी भी अल्पसंख्यक समुदाय या वर्ग विशेष के वोटों को ऐसे वादों के आधार पर खरीदना चाहती हैं, जिसके कारण विभाजन पैदा होते हों, तो ऐसी पार्टियों को चुनाव से अलग रखा जाय। राजनीतिक पार्टियाँ उन्हीं चुनाव मुद्दों को सामने रखें जो किसी भी हालत में राष्ट्रीय भावना पर आघात न पहुंचा सकें और जिनसे देश के सभी निवासियों का कल्याण हो।

किसी भी राष्ट्र के संचालन में वैसे तो उसके सभी समुदायों एवं वर्गों का योगदान रहता है किन्तु मुख्य स्तम्भ की तरह या गाड़ी के पहिए के धुरे की तरह विशेष जिम्मेदारी वहाँ के बहुसंख्यक समुदाय के ही कंधों पर होती है। जहाँ एक ओर उसका यह कर्त्तव्य होता है कि वह राष्ट्र के अल्पसंख्यक समुदायों को सम्मानपूर्ण स्थान दे और उनको देश के सभी क्षेत्रों में बढ़ने का उचित अवसर दे वहीं उसका यह भी प्रथम कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व है कि वह किसी भी हालत में राष्ट्रहित की हानि न होने दे और यदि स्वार्थवश कोई विरोधी शक्ति राष्ट्रहित को हानि पहुंचाने में तत्पर दिखाई दे तो उसे बलपूर्वक कुचल दे। यदि किसी भी राष्ट्र का बहुसंख्यक समाज अपना यह कर्त्तव्य निभाने से हिचकता है तो वह राष्ट्र नपुँसकता को प्राप्त होता हुआ नष्ट हो जाता है।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि आज भारत के इस विशाल गणतन्त्र के निर्माण के पीछे पिछले एक हजार वर्षों के अनवरत बलिदान की लंबी कहानी है जिसकी आग में करोड़ों जनों ने आहुतियां दी। इस महान राष्ट्र में हम इसलिये नहीं पैदा हुए हैं कि इस अनुपम बलिदान को निरर्थक हो जाने दें। आज आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दू और मुसलमानों में एक विशेष सौहार्द्र उत्पन्न हो सके। उसके लिए हमें इतिहास के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा। हिन्दुओं को यह समझना पड़ेगा कि देश के मुसलमान निवासी उनका अपना ही खून हैं और अपने ही भाई—बन्धु हैं। विदेश से आने वाले मुसलमान आक्रमणकारियों के कारण और उनके लम्बे शासन के कारण परिस्थितिवश या स्वेच्छा से या हिन्दू समाज की कमजोरियों के कारण उन्हें धर्मपरिवर्तन करना पड़ा था। विदेश से आकर बसने वाले मुसलमानों की संख्या आज मुट्ठी भर ही होगी और वे शायद अपने मूल का भी पता ठीक से न लगा सकें। हिन्दुओं का इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए कि उन पर सदियों तक हुए [illegible] अधिक अत्याचार करने वाले मुसलमान आक्रमणकारी मोहम्मद

गुलाम, खिलजी, लोदी, तुगलक और मुगल खानदान के लोग—भारत के मुसलमान नहीं थे। ये सभी के सभी विदेशी थे और विदेशी सेनाओं के साथ आये थे और उनकी सेनाओं में भी निरन्तर विदेशियों की भर्ती होती थी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सभी विदेशी आक्रमणकारियों या साम्राज्यवादी शक्तियों के शासन में धर्म परिवर्तित मुसलमान जनता उतनी ही परेशान थी और उसकी हालत उतनी ही बदतर थी जितनी आम जनता की। यही कारण है कि सैकड़ों वर्षों के मुसलमान शासन के पश्चात आर्थिक रूप से भारत के साधारण मुसलमान पददलित ही थे। हिन्दुओं को जानना चाहिए कि हजारों मंदिरों का ध्वंस और अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन या अमृतसर में बार-बार खून की होली भारत के मुसलमानों ने नहीं खेली थी। उन सबके पीछे मुख्यतः यही विदेशी आक्रमण कारी थे। दूसरी तरफ देश के मुसलमान भाइयों को गंभीरता से इस बात को विचारना चाहिये कि यह विदेशी आक्रमणकारी शक्तियां उनके लिए कभी भी यादगार या आदर के पात्र नहीं हो सकती हैं? कदापि नहीं। उनको यह नहीं भूलना चाहिए कि पिछले ३५ वर्षों में हजारों मुसलमानों ने अपनी जान विदेशी मुस्लिम शक्ति से लड़ते हुए निछावर की है। आज क्या भारत का धर्म परिवर्तित ईसाई समाज पुर्तगाल, स्पेन, हालैंड, फ्रांस और इन्गलैण्ड से आने वाली शक्तियों पर गर्व का अनुभव करेगा? १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों को मारने वाले जान लारेन्स जैसे वरिष्ठ अंग्रेज अधिकारियों या जलियां वाला बाग में गोली बरसाने वाले हत्यारे जनरल डायर को क्या वे अपना पूर्वज या आदर का पात्र मानेंगे? कदापि नहीं।

यह भी एक मूलभूत सिद्धान्त है कि किसी भी देश में राष्ट्रीय मान और सम्मान के दो विरोधी बिन्दु नहीं हो सकते। यदि इन पर पर्दा डाला जायगा तो ये पाखंड और एक ऐसी घातक भूल होगी जो भारत के हिन्दू—मुसलमानों को सच्चे दिल से एक नहीं होने देगी और विषम परिस्थितियों में एक ऐसी भावना पर [illegible] कर लेगी जिसके परिणाम बहुत भयानक होंगे। कल्याण हो।

घृणा किसे कहते हैं यह शायद भारत का हिंदू और मुसलमान नहीं समझता और भगवान न करे उसे कभी ऐसा समझने का मौका भी आये। अगर घृणा का सही रूप समझना हो तो लेबनान में आज लड़ने वाले ईसाई और मुसलमानों के बीच दिखेगा या उसकी चरम सीमा देखनी हो तो इसरायल और अरब देशों के बीच में देखी जा सकती है। अभी भारत के हिन्दू और मुसलमान अरब-इसरायली किस्म की घृणा से बहुत दूर हैं। भारत के मुसलमान भाइयों को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि उन्हें अब देश के बाहर देखने से कोई लाभ नहीं और न उनके लिए बाहर कहीं स्थान है। दो मुस्लिम परिवार दो वर्ष पूर्व पाकिस्तान बसने गये थे। किन्तु उनमें से एक वापस आ गया। मैंने कारण पूछा तो बोला कि धरती की माटीं ने बुला लिया। मेरा केवल यही कहना है कि वे सही मायनों में इस भारत को अपना वतन समझें और यह भी समझें कि इसकी धर्म–संस्कृति की सारी विरासत भी उनकी विरासत है। अब भी यदि कोई गुमराह नेता हिन्दू समाज की कमजोरी से लाभ उठाकर हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन कराने का मार्ग दिखाता है तो इससे बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण और अनिष्टकारी दुष्परिणामों से भरी काई सलाह नहीं हो सकती। आज समय आ गया है कि भारत का हिन्दू और मुसलमान पिछले कई सौ वर्ष के इतिहास को सही दृष्टि से देखकर अपने बीच का अविश्वास समाप्त कर दे और एक जुट होकर राष्ट्र निर्माण के कार्य में लग जाय। ●

राष्ट्र को धर्मशाला न बनने दें

लोक सभा में गृह राज्य मन्त्री श्री योगेन्द्र मकवाना द्वारा दी गयी यह सूचना कि लगभग ५ हजार धार्मिक मिशनरी एवं सामाजिक संस्थाओं को १९७७ में १ अरब २४ करोड़ रुपया विदेशों से मिला, स्वतन्त्रता के बाद का सबसे सनसनीखेज समाचार माना जायगा । इतने पुराने आंकड़े प्रस्तुत करना ही इस बात का प्रमाण हैं कि सरकार किस प्रकार इस राष्ट्रीय समस्या को अब तक उपेक्षाभाव से देखती रही है। अनुमानतः यह राशि इस समय १२ से १५ अरब रुपयों के बीच है। बम्बई के प्रसिद्ध 'साप्ताहिक ब्लिट्ज' के अनुसार हाल में भारत सरकार के कृषि राज्य मन्त्री श्री आर० वी० स्वामीनाथन ने मदुरै में बताया कि त्रिचनापल्ली की केवल एक शिक्षा संस्था को एक अरब देश से ३ करोड़ रुपये प्राप्त हुए। बाहर से इतनी विशाल धनराशि के भारत में आने के दो उद्देश्य स्पष्ट हैं—धर्म परिवर्तन और सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में अव्यवस्था फैलाना। ईसाईयत एवं इस्लाम में किसी व्यक्ति का अपने धर्म में लाना धार्मिक दृष्टि से स्वर्ग प्राप्ति का एक साधन माना जाता है। इन धर्मों को मानने वाला कोई बुरे से बुरा व्यक्ति दूसरे धर्म के बुरे से बुरे व्यक्ति को अपने धर्म में ले आता है तो वह अपने को केवल इसी कार्य से पुण्यवान मानने लगता है। अतः धर्म परिवर्तन के लिए विदेशों में धन की कमी नहीं है। दूसरी ओर ईसाई साम्राज्यवादी शक्तियां तथा तेल के धन की शक्ति से उमड़ते हुए कुछ इस्लामी देश विश्व के अन्य देशों विशेषकर भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए व्याकुल रहे हैं। उन्हें इससे बढ़कर और क्या संयोग मिल सकता है कि एक ही तीर से दो चिड़ियों को मारा जाय। धन देने वाले का पारलौकिक कल्याण हो और उन देशों का राजनीतिक उल्लू सीधा हो।

ध्यान रखने की बात है कि एक बार अपने धर्म में लाने के बाद फिर

उसका समाज के स्तर पर एवं धर्म के स्तर पर कितना हनन होता है, उसकी चिन्ता धर्मपरिवर्तन कराने वाले ईसाइयों को है न इस्लाम को। अमरीकी पत्रिका 'टाइम' के अनुसार अभी नैरोबी में हुई अखिल अफ्रीकन चर्च महासभा की वैठक में दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि ने कहा है कि आज ईसाइयों पर ईसा के नाम पर ईसाइयों द्वारा जितना बड़ा संहार एवं अत्याचार हो रहा है उतना दुनियामें कहीं नहीं। दूसरी ओर ईरान में ३ लाख बहाई मत मानने वालों तथा अन्य मुसलमानों का जो नरसंहार हो रहा है वह मामला जेनेवा में संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार कमीशन के सामने चल रहा है। कमीशन के सामने एक मुस्लिम देश के प्रतिनिधि ने ईरान के धार्मिक नेताओं पर यह गंभीर अभियोग लगाया है कि वे इतने धर्मान्ध हो चके हैं कि वे इस्लाम की मान्यताओं का पागलपने से अर्थ निकालकर अपने ही धर्म को मानने वालों पर भयानक अत्याचार कर रहे हैं।

यह भी एक गौर करने योग्य बात है कि इस समय विश्व में धर्म परिवर्तन का फैलाव करने की गुंजाइश कुछ ही देशों में सीमित हो गयी है। आज कोई भी संगठित रूप से बाहरी धन के बूते न तो ईसाई देशों में और न ही साम्यवादी या इस्लामी देशों में धर्मपरिवर्तन कराने की साच सकता है। यही स्थिति बौद्ध धर्म के अनुयायी चीन, जापान एवं हिन्दचीन के देशों पर भी लागू होती है। अब बचा केवल भारत जिसकी उदार धर्म निरपेक्ष नीति का अन्य देशों तथा धर्मों ने पूरा लाभ उठाने में कोई कसर नहीं उठा रखी है। मानो भारत कोई एक राष्ट्र न होकर एक खुली धर्मशाला हो। राजनीतिक दृष्टि से धर्मपरिवर्तन के या विदेशी मुफ्त के धन के खर्च के तीन मुख्य उद्देश्य होते हैं। १. अपने पिट्ठुओं की संख्या बढ़ाना, ९. कुछ पंचमांगियों का निर्माण करना तथा ३. आवश्यकता पड़ने पर राजनीतिक उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए छापामार युद्ध छेड़ने की क्षमता बनाना। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नागालैण्ड एवं मिजोरम के रूप में हमारे सामने है। जब हमारी सरकार बाहरी शत्रुओं से रक्षा के लिए इतनी तत्पर रहती है और राजनीतिक एवं सैन्य स्तर पर कोई कसर

नहीं रखती तो आज यह समय की मांग है कि आंतरिक शत्रुओं के प्रति सौगुना अधिक सावधानी बरती जाय जब सरकार बाहरी शत्रुओं से निपटते समय इस बात की परवाह नहीं करती कि हमारे शत्रु देश क्या कहेंगे तो आंतरिक शत्रुओं से निपटने में भी वही रुख कठोरता से अपनाना चाहिए। क्या आज अमेरिका या अन्य कोई पश्चिमी ईसाई देश एक क्षण के लिए भी यह स्वीकार करेगा कि उसकी २० प्रतिशत आबादी भी इस्लाम या बौद्ध धर्म स्वीकार करे और वहाँ लेबनान देश जैसी स्थिति पैदा करे जहां आज व्यावहारिक रूप से विभाजन हो ही चुका है। क्या आज ईरान, सऊदी अरब, पाकिस्तान या कोई अन्य इस्लामी देश यह स्वीकार करेगा कि ईसाई, बौद्ध या हिन्दू वहां धर्मपरिवर्तन का काम कर सकें। कोई साम्यवादी देश क्या एक क्षण के लिए भी धर्म परिवर्तन की आजादी अपने देश में देगा ?

सही बात तो यह है कि भारत के नेता अब अपने धर्म-निरपेक्षिता के नाम पर साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने की नीति छोड़ दें तथा इन भयानक राष्ट्र-विरोधी कार्यवाहियों पर तुरन्त अंकुश लगायें। थोड़े से स्कूलों और अस्पतालों के नाम पर सारे देश की सुरक्षा खतरे में डालना अब कोई भी स्वीकार नहीं करेगा। इन संस्थाओं को चलाने वाले लोग अपने आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार उन्हें चलाय, न कि बाहरी देशों से आये हुए विषैले धन से। इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि ऐसी सभी संस्थाओं को तथा ऐसे गंदे धन को सरकार कठोरता से प्रतिबन्धित करे। विशाल हृदयता का यह अर्थ नहीं होता कि हृदय पर ही चोट पहुंचने दी जाय। शरीर की रक्षा करने वाला हृदय भी स्वयं मजबूत पसलियों एवं कवच के भीतर सुरक्षित होता है। ठीक इसी प्रकार राष्ट्रीयता की भी सुरक्षा की जानी चाहिए।

हिन्दू समाज आत्म निरीक्षण करें

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों आर्य जाति के अभिन्न अंग है। यदि आर्य जाति श्रेष्ठ हैं तो यह चारो वर्ण भी श्रेष्ठ है। किसी श्रेष्ठ और पूज्य पुरुष के किसी अंग में अपूजनीयता का भाव नहीं रहता। व्यावहारिक सत्य तो यह है कि सर ही चरणों पर नवाया जाता है। आज चारों वर्णों के लोग समान रूप से सभी कार्यो में लगे हुए हैं। ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जहां ये चारों न हों। इसलिए यह कहना कि एक वर्ण ऊंचा है और दूसरा नीचा सर्वथा मिथ्या है। चाणक्य के अनुसार आर्य जाति के प्राण स्वरूप किसी शूद्र को यदि कोई दास बनाता हैं तो उसे मृत्यु दण्ड दिया जाना चाहिए। हिंदू धर्म में वर्ण व्यवस्था मूलतः कर्म और गुण के आधार पर ही स्वीकार की गई थी, न कि जन्म के आधार पर। यही कारण है कि शास्त्रों में कई स्थानों पर आता है कि आचारहीन ब्राह्मण से राजा शूद्र के कर्म करवाये। आज न तो सम, दम, विद्या, तप आदि से युक्त ब्राह्मण ही दिखाई देते हैं न ही घृति, शूरता और कमजोरों के लिये प्राण निछावर करने वाले क्षत्रियों का ही कहीं पता है, और न उदर के समान सम्पूर्ण शरीर का पोषण करने वाले वे वैश्य ही नजर आते हैं कि समाज के प्रत्येक वर्ग अथवा वर्ण का परिपालन करने के लिए उदारता से धन व्यय करें। ऐसी परिस्थिति में अन्य वर्णो द्वारा शूद्रों को अपने से नीचा मानने का विचार दंभ एवं आत्मश्लाघा से अधिक कुछ भी नहीं है।

हिन्दू धर्म की यह भी मान्यता रही है कि विभिन्न देश काल में समाज के युगधर्म के अनुरूप ही वर्णाश्रम धर्म के नियम भी बदल जाते हैं। यही कारण था कि मध्ययुग में संतों ने यह क्रांतिकारी सन्देश दिया कि 'जाति पांति पूछै नहि कोई, हरि को भजै सो हरिका होई।' बदलते युग धर्म के इस आधार पर ही हिन्दू समाज में समानता और एकता का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है और मानव मात्र के कल्याण की कामना की गयी है।

हिन्दू समाज के सम्बन्ध में एक यह भारी भ्रम व्याप्त है कि शूद्र को शासन एवं सामाजिक कार्यों में कभी समान अधिकार नहीं दिया गया था। सत्य तो इसके विपरीत है। महाभारत के शांति पर्व में मंत्रिपरिषद के गठन की व्यवस्था बड़े स्पष्ट रूप से दी गयी है। उसमें पितामह भीष्म के अनुसार मंत्रियों की संख्या ३७ होनी चाहिये जिसमें ४ ब्राह्मण, ४ शूद्र, ८ क्षत्रिय और २१ वैश्य होने चाहिए। वैश्यों की इतनी अधिक संख्या संभवतः इसलिए थी कि उस समय कृषि उद्योग एवं व्यापार काफी उन्नत अवस्था में थे। ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि ब्राह्मण और शूद्रों की संख्या एक समान रखी गई थी। । सभी हिन्दू गर्व से यह बात स्मरण करेंगे कि महाराजा दशरथ के अत्यन्त विश्वासपात्र मन्त्री एवं प्रिय सखा तथा भगवान राम एवं सीता के लिये दशरथ जी ही के तुल्य आदरणीय 'सुमन्त जी' शूद्र ही थे। सामाजिक स्तर पर समानता के व्यवहार के बहुत से प्रमाण महाभारत में मिल जायेंगे। द्रौपदी के स्वयंवर के समय मत्स्यभेदन के बाद जब द्रौपदी पांडवों के साथ नगर के बाहर एक कुम्हार के घर, जहां वे ठहरे थे, चली गयी तब राजा द्रुपद ने अपने पुत्र धृष्टद्युम्न को उनके पीछे गुप्त रूप से जाकर यह पता लगाने को कहा कि ये महान तेजस्वी पुरुष क्या कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय हैं या ये कोई श्रेष्ठ वैश्य या शूद्र हैं ताकि वे आगे विवाह की कार्यवाही उन्हीं की कुलरीति के अनुसार उचित रूप से कर सकें। महाभारत में स्पष्ट रूप में आता है कि जब पांडव वार्णावत नगर भेजे गये थे तब वे सम्मान प्रकट करने के लिए नगर के ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र सभी वर्णों के वरिष्ठ लोगों के घरों पर गये थे।

शास्त्रों ने आपातकाल में देश और धर्म की रक्षा के लिये चारों वर्णों को समान रूप से शस्त्र उठाने की आज्ञा दी है और ऐसी परिस्थितियों में शूद्र को भी राजा बनने का अधिकार दिया है। इसकी स्पष्ट विवेचना युधिष्ठिर और भीष्म की वार्ता में आती है। शांति पर्व में प्रश्न पूछते हुए युधिष्ठिर ने समस्या उठायी कि पितामह! जब क्षत्रिय व ब्राह्मण राष्ट्र और धर्म की रक्षा में असमर्थ हो जायं तो क्या उस समय उनकी रक्षा करने वाले वैश्य या शूद्र का

राजा बना देना चाहिए ? और उत्तर की अपेक्षा किये बिना युधिष्ठिर स्वयं अपना विचार प्रकट करते हुए बोले मेरे विचार से उनको राजा अवश्य बनाया जाना चाहिए । पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर के इस विचार का पूरा अनुमोदन करतें हुए इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है ।

वर्ण व्यवस्था अब अर्थहीन हो चुकी है

अध्यात्म के क्षेत्र में तो हिन्दू धर्म में वर्ण व्यस्था की बात तो दूर रही कुल, जाति, धन, रूप, विद्या आदि की श्रेष्ठता के अभिमान को भी परमार्थ सिद्धि में बाधक माना गया है । परमार्थ सिद्धि के प्रसंग में वर्ण, कुल, जाति की कल्पना आकाश में गमनागमन के लिए सड़कों और फुटपाथों की कल्पना की भांति ही हास्यास्पद लगती है । जैसे आकाश में निश्चित संकेतों पर निर्भर रहकर ही सही रूप से दिशा और लक्ष्य का ज्ञान हाता है उसी प्रकार हिन्दू धर्म में परमात्मा की ओर बढ़ने के लिये यम—निमम इत्यादि तो केवल चित्त शुद्धि के आधार हैं । वास्तविक प्रगति के लिए तो ईश्वर और गुरू की कृपा ही मार्ग का कार्य करते हैं । यही करण था कि अपने समय के सबसे महान क्षत्रिय वंश की कुलवधू मीराबाई ने संत रैदास जी के चरणों में बैठकर ज्ञान प्राप्त किया, ब्राह्मण कौशिक ऋषि ने एक व्याध को अपना गुरू बनाया और भगवान विष्णु की सवारी पक्षिराज गरुड़ को कौये [काक भुशुंडिजी] की शरण में जाकर अध्यात्यम की शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी । हिन्दू शास्त्र एवं इतिहास इस प्रकार के सहस्रों उदाहरणों से भरे पड़े हैं ।

आज हिन्दू समाज के लिए सबसे गर्व की बात तो यह है कि मध्य कालीन युग, जिसे भक्ति युग भी कहते हैं, मेंजब सारा देश विदेशी आंक्रमणकारी मुस्लिम शक्तियों से आक्रान्त था उस समय संतों एवं भक्तों ने ही मुख्यतः देश के दलित एवं पीड़ित समाज की रक्षा की थी और इन संतों में से लगभग ८० प्रतिशत संत गैर ब्राह्मण वर्गों के थे । ये सभी संत देश की समस्त जनता के लिये परमश्रद्धा और भक्ति के पात्र थे और आज भी हैं । अध्यात्मा के क्षेत्र

में ऐसी समानता का उदाहरण विश्व के इतिहास में कहीं भी नहीं है।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि हिन्दू समाज का गठन गुणों और कर्मों के आधार पर हुआ था और प्रशासनिक एवं सामाजिक कार्यों में सभी वर्णों का समान रूप से योगदान रहा है । राष्ट्र के विपत्तिकाल के समय शूद्र एवं वैश्य वर्णों का जो अभूतपूर्व योगदान रहा है, उसके उदाहरणों से भारत का इतिहास भरा है । मैं यहाँ पर पाठकों का ध्यान शास्त्रों एवं पुरानें इतिहास से हटाकर पिछले ३०० वर्षों में हुई ऐसी दा महान घटनाओं की ओर लाना चाहूंगा जिन्होंने हिन्दू धर्म में दा महान क्षत्रिय जातियों को जन्म दिया और देश की रक्षा की।

शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह

पहली चटना के प्रवर्तक क्षत्रपति शिवाजी थे जिन्होंने १७ वीं शताब्दी में महाराष्ट्र के अन्दर अपने अदम्य शौर्य, रणकौशल, त्याग एवं बलिदान के बूते वहां की साधारण हिन्दू जनता का एक शस्त्रजीवी क्षत्रिय के रूप में परिवर्तित कर दिया । इस प्रबल शक्ति ने अपने समय में विश्व के सबसे अन्यायी विदेशी मुगल साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंका था । दूसरी ऐसी महान ऐतिहासिक घटना कुछ ही वर्षों बाद १८ वीं शताब्दी के शुरू में पंजाब में हुई। इसके जन्मदाता थे गुरु गोविन्द सिंह जी, जिन्होंने जान हथेली पर रखकर आये हुए पाँच शूद्र शिष्यों को लेकर महान खालसा की स्थापना की थी जिसके अंतर्गत आज शौर्यसंपन्न सिख समाज विश्व के सामने प्रस्तुत है । इन्हीं सिखों के अनुपम बलिदान एवं वीरता का यह फल था कि विदेशी आक्रमणकारियों, नादिरशाह एवं अबदाली के हाथों छीना गया पंजाब का समस्त भू भाग तथा कश्मीर और लद्दाख के क्षेत्र केवल डेढ़ सौ वर्ष पूर्व पुनः हमारे पास वापस आ सके और देश के अभिन्न अंग हैं ।

ये दोनों उदाहरण आज हिन्दू समाज के सामने पथ प्रदर्शक एवं शिक्षा के रूप में हैं । आज देश का कोई हिन्दू इन दोनों अभूतपूर्व देनों की उपेक्षा

करने की कल्पना भी नहीं कर सकता । जब हिन्दू समाज की प्रबल जीवनी शक्ति के इतने ठोस प्रमाण हमारे सामने मौजूद हैं ऐसी परिस्थिति में हिन्दू समाज अपने किसी एक अंग का निम्न या पीड़ित स्थिति में रखे तो यह अत्यन्त लज्जा की ही नहीं बल्कि आत्मघाती बात है ।

इस धर्म की प्रगतिशीलता एवं सजीवता का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय भी महान धार्मिक सुधारकों—महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, राजा राम मोहन राय, दक्षिण के वीरशैव इत्यादि के अलावा कांग्रेस जैसी राजनीतिक पार्टियों का भी यह मुख्य मुद्दा था कि हिन्दू समाज की पिछड़ी जातियों का आर्थिक रूप से शीघ्रातिशीघ्र उद्धार किया जाय । यही नहीं जब देश स्वतंत्र हुआ तो इस सुधार आंदोलन को कानूनी जामा पहनाकर संविधान के रूप में स्वीकार किया गया । शताब्दियों का अन्याय शीघ्रातिशीघ्र निवारित हो सके, इसके लिए संसद एवं विधान मंडलों तथा प्रशासन एवं शिक्षा संस्थाओं में सभी अछूत कही जाने वाली जातियों को संरक्षण दिया गया है । यह विश्व के इतिहास में बेजोड़ उदाहरण है । आज सारे हिन्दू जाति का यह कर्तव्य है कि वह पूर्वजों द्वार दिखाये गये इस न्याय पूर्ण मार्ग का अनुसरण कर और वर्ण व्यवस्था जो अर्थहीन हो चुकी है, उसे गंदे और जीर्ण वस्त्र की तरह दूर फेंके ।

समाजों में एक है। सरकार एवं सेना में तो इस वर्ग के बहुत ही कम लोग उच्च पदों पर हैं। अमरीका की आर्थिक प्रगति में गुलामों के रूप में सैकड़ों साल योगदान देने के बाद भी वे सामाजिक स्तर पर जहां के तहाँ पड़े है। वहां के मूल निवासी रेड इंडियनों का तो सरकार और समाज में कोई स्थान ही नहीं है। यही नहीं, इटली, स्पेन और मैक्सिको, चीन जापान आदि देशों से आकर बसे हुए अमरीकन नागरिक भी वहां दूसरी श्रेणी के नागरिकों की भांति जीवन यापन करने को बाध्य हैं। वहां तो एक छत्र बोलबाला इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों से आकर बसे हुए एंग्लो-सेक्सन लोगों का ही है।

पश्चिम यूरोप में

पश्चिमी यूरोप के देश सैकड़ों वर्षों तक पशुओं की भांति अफ्रीका के निवासियों को बलपूर्वक पकड़-कर अमरीका और अरब देशों के साथ गुलामों का व्यापार करते रहे और अपने पचासों उपनिवेशों में उन्हें तथा भारत महादेश के लोगों को बन्धुआ मजदूरों के रूप में ले जाकर काम कराते रहे और उनके खून पसीने से सनी मेहनत पर अपनी आर्थिक उन्नति की नींव डालते रहे हैं। यही नहीं, अपने मूल देशों के उद्योग धंधों में काम करने के लिये भी वे उन्हें लाते रहे। ईसाई होने के बाद भी उन्हें वहां हमेशा ठोकरें ही खानी पड़ीं। विश्व में प्रजातन्त्र का जनक होने का दंभ करने वाले इंग्लैंड का पाखंड तो आज दुनिया के सामने प्रकट ही हो गया है। अपने आर्थिक लाभ के लिए उन्होंने लगभग २० लाख लोगों के लिये पाँचवें और छठे दशक में इंगलैंड बुलाया, उन्हें वहां की नागरिकता भी प्रदान की, इनमें से आधे लोग ईसाई भी हैं, किन्तु आज उनके साथ जो दुर्व्यवहार एवं खुले आम भेदभाव एवं अत्याचार किया जा रहा है वह अमानुषिक है। आज उनका जीवन और धन-संपत्ति भी खतरे में है। इस भेदभाव को वहां कानूनी जामा भी पहना दिया गया है। अब ये सभी २० लाख इंग्लैंड के पीड़ित नागरिक जो बड़ी उमंगों को लेकर वहां गये थे

सभी राष्ट्रों एवं धर्मों में दलित एवं पीड़ित लोगों की समस्या है

जिस प्रकार कोई व्यक्ति और समाज केवल अपने गुणों की ओर ही देखता है और उसकी डींग हांकता है और अपने दोषों की उपेक्षा कर देता है तो वह पतन की ओर अग्रसर होता है, उसी प्रकार केवल दिन-रात अपने दोषों और अवगुणों से ही ग्रसित रहने वाला व्यक्ति और समाज निश्चय ही आत्मकुंठा और परिणामतः आत्मघात की जकड़ में आ जाता है। लेकिन वही निराशावादी व्यक्ति जब आंख खोलकर देखता है कि उसके चारों ओर के व्यक्ति उससे भी गये बीते है तब उसकी ही भावना उसको आत्महत्या से रोकती है और उसे अवसर मिलता है कि अपने दोषों को दूर कर प्रगति की ओर बढ़े।

आज हिन्दू समाज में यह हीन भावना घर कर गयी है कि ऊंच-नीच की कुप्रथा केवल उन्हीं के यहां है और उन्हीं के देश और धर्म में कुछ लोग दलित एवं पीड़ित हैं। जैसा कि हम पिछले लेख में लिख चुके हैं कि हिन्दू समाज का अब एकमत होकर निश्चय के साथ इस वर्ण व्यवस्था के दोष को उखाड़ फेंकना है। इस काम में उसको और अधिक बल मिल सके, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि हम आज विश्व के अन्य देशों एवं धर्मों में क्या स्थिति है, उसकी ओर भी दृष्टिपात करें।

अमरीका में

पहले हम विश्व के सबसे समृद्ध एवं बलवान देश अमरीका को लें। वहां के रहने वाले एक करोड़ के ऊपर नीग्रो लोग, जो कि ईसाई धर्म को ही मानने वाले हैं, आज विश्व के सबसे दलित

समाजों में एक है। सरकार एवं सेना में तो इस वर्ग के बहुत ही कम लोग उच्च पदों पर हैं। अमरीका की आर्थिक प्रगति में गुलामों के रूप में सैकड़ों साल योगदान देने के बाद भी वे सामाजिक स्तर पर जहां के तहाँ पड़े है। वहां के मूल निवासी रेड इंडियनों का तो सरकार और समाज में कोई स्थान ही नहीं है। यही नहीं, इटली, स्पेन और मैक्सिको, चीन जापान आदि देशों से आकर बसे हुए अमरीकन नागरिक भी वहां दूसरी श्रेणी के नागरिकों की भांति जीवन यापन करने को बाध्य हैं। वहां तो एक छत्र बोलबाला इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों से आकर बसे हुए एंग्लो-सेक्सन लोगों का ही है।

पश्चिम यूरोप में

पश्चिमी यूरोप के देश सैकड़ों वर्षों तक पशुओं की भांति अफ्रीका के निवासियों को बलपूर्वक पकड़-कर अमरीका और अरब देशों के साथ गुलामों का व्यापार करते रहे और अपने पचासों उपनिवेशों में उन्हें तथा भारत महादेश के लोगों को बन्धुआ मजदूरों के रूप में ले जाकर काम कराते रहे और उनके खून पसीने से सनी मेहनत पर अपनी आर्थिक उन्नति की नींव डालते रहे हैं। यही नहीं, अपने मूल देशों के उद्योग धंधों में काम करने के लिये भी वे उन्हें लाते रहे। ईसाई होने के बाद भी उन्हें वहां हमेशा ठोकरें ही खानी पड़ीं। विश्व में प्रजातन्त्र का जनक होने का दंभ करने वाले इंग्लैंड का पाखंड तो आज दुनिया के सामने प्रकट ही हो गया है। अपने आर्थिक लाभ के लिए उन्होंने लगभग २० लाख लोगों के लिये पाँचवें और छठे दशक में इंगलैंड बुलाया, उन्हें वहां की नागरिकता भी प्रदान की, इनमें से आधे लोग ईसाई भी हैं, किन्तु आज उनके साथ जो र्दुव्यवहार एवं खुले आम भेदभाव एवं अत्याचार किया जा रहा है वह अमानुषिक है। आज उनका जीवन और धन-संपत्ति भी खतरे में है। इस भेदभाव को वहां कानूनी जामा भी पहना दिया गया है। अब ये सभी २० लाख इंग्लैंड के पीड़ित नागरिक जो बड़ी उमंगों को लेकर वहां गये थे

अपने प्राणों को संकट में पा रहे हैं तथा वहां से भागने की कोशिश में हैं।

द० अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका द्वारा अपने बहुसंख्यक ईसाई, नीग्रो तथा अन्य अश्वेत नागरिकों के साथ किया जा रहा गुलामों से भी बदतर व्यवहार आज सारी दुनिया के सामने है। उनके नृशंस अत्याचार के विरूद्ध उठने वाली दुनिया के सभी देशों की आवाजों का उन पर अभी तक कोई असर नहीं पड़ा है।

रूस में

साम्यवाद की जननी एवं विश्व की दूसरी सबसे बड़ी ताकत रूस को ही ले लें। वहां पर स्लाव जाति के लोग मुख्य वर्ग के रूप में सब ओर छाये हुए हैं तथा जो कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं (रूस में एक ही पार्टी है और पार्टी की सदस्य संख्या सीमित है) उन्हें समाज में जो विशिष्ठ स्थान प्राप्त है वह अन्य नागरिकों को नहीं।

जारशाही से लेकर आज तक रूस में विस्तारवाद, धर्म एवं राज्य की सुरक्षा के नाम पर जितना रक्तपात एवं नृशंसता हुई है, उसका उदाहरण मानव इतिहास में मिलना मुश्किल है।

अरब, ईरान आदि इस्लामिक देशों में

अरब देशों के बारे में तो हम सभी जानते हैं कि किस प्रकार वह गुलामों का व्यापार सैकड़ों-सैकड़ों वर्षों तक करते रहे हैं। गुलामी की प्रथा उनके समाज का स्वाभाविक अंग रही है, चाहे वह गुलाम स्वधर्मी हों या विधर्मी। चूंकि इस्लाम का जन्म अरब में हुआ था इसलिए अरब के मुसलमान अपने को अन्य देशों के मुसलमानों से बहुत ऊंचा समझते हैं। शिया मुसलमानों का मुख्य देश ईरान दूसरी ओर अपने को सर्वश्रेष्ठ मुसलमान मानकर सदैव ही विश्व के अन्य मुसलमानों को हेय दृष्टि से देखता रहा है तथा उन्हें

अपमानित करने से कभी चूकता नहीं है। ईरान का अन्य मुस्लिम देशों के साथ झगड़ा और शत्रुता के मूल में यही श्रेष्ठता और अहंकार की भावना है।

इस्लामिक देशों में दूसरे धर्मों के लोग मुट्ठी भर ही है तो भी उन्हें कभी भी समानता का अधिकार नहीं दिया गया जिस देश में किसी एक मुस्लिम जाति का बोलबाला है जैसे कि कहीं अरबों की प्रधानता हैं कहीं तुर्कों इत्यादि की, वहां अपने से भिन्न दूसरी जाति के मुसलमानों के साथ भीं भारी भेद-भाव किया जाता है और उन्हें दबाकर रखा जाता है।

इस्लाम में अपने से भिन्न संप्रदायों के प्रति भेदभाव किस हद तक बरता जा सकता है और कमजोर वर्ग को मात्र जीवित रहने के लिए कितने भयावह संकटों का सामना करना पड़ता है, उसका एक उदाहरण हम सीरिया से देंगे।

शिया सम्प्रदाय का एक भाग आठवीं शताब्दी में उनसे अलग हो गया था जिन्हें इस्माइली नाम से जाना जाता है। इन्हीं के धार्मिक गुरूओं की परम्परा में आगा खां हैं। दा सम्प्रदायों में विभक्त इस्माइली सीरिया में आठ ही प्रतिशत हैं। वहां ७० प्रतिशत सुन्नी तथा बाकी शिया मुसलमान हैं।

शिया एवं सुन्नी सम्प्रदायों के कोप से बचने के लिए ये इस्माइली लगभग आठ सौ वर्षों तक देश के दुर्गम स्थलों में छुपकर रहे। अपने सम्प्रदाय के धर्म का पालन ये इतना गुप्त रूप से करते थे कि इसका रहस्योद्घाटन १८६३में तब हुआ जब इस सम्प्रदाय के एक नुसैरी मुसलमान सुलेमान इफ़ेंदीं ने यूरोप में ईसाई धर्म स्वीकार कर इसके बारे में दुनिया को बताया। इससे बढ़कर अत्याचार एवं सामाजिक भेदभाव की दुनिया में और क्या मिसाल मिल सकती है।

पाकिस्तान में

पाकिस्तान तो हमारे बगल का ही देश है। उसने अपने को इस्लामिक देश

अन्तर्राष्ट्रीय कुचालें एवं राजनीतिक दलों की पदलिप्सा

जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में भारत का स्थान दूसरा है और औद्योगिक उत्पादन में आठवां। इसके विशाल प्राकृतिक साधन, विज्ञान एवं प्राविधिक कुशलता इतनी आगे बढ़ चुकी हैं कि इस देश का कुछ समय में ही विश्व की प्रमुख शक्तियों में हो जाना अवश्यम्भावी है। स्वाभाविक है कि दूसरी बड़ी शक्तियों, विशेषकर साम्राज्यवादी शक्तियों को, भारत का इस प्रकार उठना नहीं सुहाता। उनकी विश्व नीतियों को यदि कोई ध्यान से देखे तो वह पायेगा कि उनका सतत् प्रयत्न इस देश को कमजोर करके टुकड़ों में बांट देना रहा है। पाकिस्तान को सदैव आक्रमणकारी शस्त्रों से सुस-ज्जित रखने के पीछे यही दुर्भावना है।

ईसाई मिशनरी

देश में हजारों की संख्या में ईसाई मिशनरियों के माध्यम से धर्म-परिवर्तन कराकर और उनमें अलगाव की भावना पैदाकर देश की राष्ट्रीय एकता में दरारें पैदा करना ईसाई देशों की कोई नयी नीति नहीं है। चाहे तलवार के बल से हो या धन के बल से धर्म-परिवर्तन कराकर ईसाई धर्म का प्रसार तथा अपनी प्रभुसत्ता का विस्तार उनकी एक व्यवहारिक नीति रही है। सारे भारतवर्ष में शिक्षा, स्कूलों एवं अस्पतालों के जाल और उन पर व्यय होने वाला अरबों रुपया इसी इरादे के हथकंडे हैं।

मदर टेरेसा

मदर टेरेसा की सेवा संस्थाएं भी इसी का एक अंग है। जब धर्म-परिवर्तन विरोधी बिल लोकसभा के सामने आया था तो उसका खुलेआम विरोध

मदर टेरेसा ने भी किया था। विश्व की जिन ईसाई संस्थाओं या ट्रस्टों के द्वारा यह रुपया भेजा जाता है, यदि उनके संगठनों के उद्देश्य देखे जायें तो उनका प्रथम एवं मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रसार करना ही है, न कि मानवता की निष्काम सेवा। यदि मानवता की सेवा की बात होती तो आज इन विकसित ईसाई देशों में अपराधों एवं शराब और नशीली दवाओं के शिकार अर्द्ध विक्षिप्त करोड़ों लोग (वहीं के आंकड़ों के अनुसार) भरे पड़े हैं। करोड़ों वृद्ध, स्त्री-पुरुष दो टूक प्यार की बात के लिए तरस कर रह जाते हैं। वहां के अस्पतालों में भारत के डाक्टर और विशेषकर नर्सें हजारों की संख्या में भर्ती किये जाते हैं। इसके बावजूद भी अपने घर के दुःख-दर्दों की उपेक्षा कर इन ईसाई मिशनरियों का भारत में इतनी बड़ी संख्या में आना केवल राजनीतिक एवं धर्म-परिवर्तन के उद्देश्यों से ही प्रेरित हैं। इसका परिणाम भी हमारे सामने प्रत्यक्ष है। असम के कई टुकड़े इन मिशनरियों के धर्मपरिवर्तन के कारण ही हुए हैं। आज पिछले २५ वर्षों से नागालैण्ड एवं मिजोरम में जिन हजारों भारतीय सैनिकों का खून बहा है और अथाह धन की जो बर्बादी वहां हो रही है उसकी जड़ में यही धर्म-परिवर्तन रहा है। बिहार, महाराष्ट्र तथा दक्षिण के कई अन्य भागों में अनेक प्रकार के प्रलोभन और सेवा के पाखंड के माध्यम से धर्मपरिवर्तन का कार्य आज भी विदेशी पूंजी के बल पर जोर-शोर से चल रहा है।

पेटरो डालर

खनिज तेलों के दामों में अन्धाधुन्ध वृद्धि के कारण तेल उत्पादन करने वाले इस्लामी देशों के पास भी इधर धन की बाढ़ सी आ गयी है। ईसाई धर्म की भांति इस्लाम मत में भी तलवार या धन के जोर पर धर्म परिवर्तन कराना एक परम धार्मिक कार्य है। इस अथाह धन की बाढ़ ने सभी इस्लामी देशों में धार्मिक कट्टरता को इस समय चरम सीमा पर पहुंचा दिया है।

सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि ये सभी इस्लामी देश इसरायल को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानते हैं और वे यह भी जानते हैं कि इसरायल की आक्रमणकारी नीति एवं उसकी सुरक्षा के पीछे अमरीका एवं पश्चिमी यूरोपीय देशों का हाथ है। यह सब होते हुए भी कट्टर इस्लामी देश अपने परम शत्रु के संरक्षक देशों में ही अपनी अतुल संपत्ति जमा कर रहे हैं। वहां के शासक अपनी ही जनता से काफी भयभीत हैं क्योंकि जनता के वास्तविक आर्थिक उद्धार के लिए वे कोई ठोस कदम नहीं उठा पा रहे हैं और उनका ९० प्रतिशत तेल का पैसा गैर उत्पादक मदों में खर्च होता है। इसीलिए अपनी सुरक्षा के लिए वे इन साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलौने बने हुए हैं।

इन पश्चिमी देशों के प्रभावश तथा अपनी धर्मान्धता और भारत के कुछ गैर जिम्मेदार मुस्लिम तत्वों के प्रभाव में अब ये देश भी भारत में धर्म परिवर्तन एवं अन्य विघटनकारी कार्यों के द्वारा भारत को कमजोर करने के लिए खुले हाथ पैसा खर्च कर रहे हैं।

राजनीतिक सत्ता लिप्सा

इधर भारत की सभी राजनीतिक पार्टियां सत्ता-लिप्सा में डूब गयी हैं और भ्रष्टाचार ने उनके रहे-सहे सम्मान को ध्वस्त कर दिया है। बात कड़वी लगेगी परन्तु है सत्य कि भारत के राजनीतिक दल अब इस प्रकार के व्यवहार कर रहे हैं कि मानों वे इस देश के विदेशी शासक हैं और हर तरह से सत्ता पर अपने पंजे बनाये रखने पर तत्पर हैं।

भारत की जनता को अब वे धर्म और जाति में बांटने लगे हैं और उनके वोटों का खुला व्यापार कर रहे हैं। वे अब यह समझते हैं कि यदि चुनाव में डाले गये वोट का ३०—३५ प्रतिशत भी उनके पक्ष में पड़ जाय तो सत्ता उनकी मुट्ठी में आ जायेगी। और कुछ नहीं तो किसी प्रकार ५–

१० सीट ही जीतने का उद्देश्य रहता है ताकि गुटबन्दी की दलगत नीति का फायदा उठा कर, मन्त्रिपद पाकर, अपने और अपने दल का स्वार्थ आगे बढ़ा सकें। इस घिनौनी राजनीति के अन्दर १० प्रतिशत संगठित मुस्लिम वोटों का वे अपने पांसे का बड़ा सहज दांव समझते हैं। इसके लिए जिस हथियार को वे ढोंग पूर्वक प्रयोग करते हैं वह है "धर्म निरपेक्षता"। इस शब्द का और इसके उद्देश्य का भरपूर उपयोग करते हुए वे सारे देश में एक ऐसा जहर फैला रहे हैं जा राष्ट्रीय जीवन एवं राष्ट्रीय एकता के लिए खतरे के रूप में सामने आता जा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय षड़यन्त्र एवं राजनीतिक पार्टियों की जयचन्दी उपेक्षा के निम्न दुष्परिणाम जनता के सामने हैं :—

—असम का कई खंडों में विभाजन, वहां के ईसाई वर्गों द्वारा विद्रोह एवं २५ वर्षों से चलती हुई निरन्तर जन और धन की अपार हानि।

—असम में बांगला देश के मुसलमानों का अबाध रूप से स्वतंत्रता के बाद प्रवेश ताकि विशिष्ट राजनीतिक पार्टी उनके वोटों द्वारा अपनी जीत सुनिश्चित कर सके। असम में पिछले २ वर्षों से विदेशी नागरिकों को निकालने का जनता का आंदोलन इसका प्रमाण है।

—वोटों के ही लालच में पश्चिम बंगाल की वर्तमान सत्तारूढ़ मार्क्सवादी पार्टी द्वारा बंगलादेशी मुसलमानों के अवैध प्रवेश को जानवूझ कर शह देना।

—भारत के विभाजन के लिए जिम्मेदार मुस्लिम लीग से केरल में सत्ता के लिए चुनाव गठबन्धन करना इसके साथ ही सभी राजनीतिक पार्टियों द्वारा परिणाम का विचार किये बिना पृथकतावादी शक्तियों से सांठ-गांठ करना।

—उर्दू भाषा को हिन्दी भाषी राज्यों में जानबूझ कर वोटों के लिए जनता पर लादने का प्रयास।

—सेना एवं पुलिस में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने के नाम पर मुसलमानों को एक निश्चित अनुपात में भर्ती करने की मांग को खड़ा करना और इसके द्वारा होने वाले भयानक परिणामों की उपेक्षा।

—परिवार नियोजन जैसी राष्ट्रीय हित की प्रमुखतम योजना की मुसलमानों और ईसाइयों द्वारा उपेक्षा। पाकिस्तान व बांगलादेश जैसे इस्लामी देश भी इसे अपने यहां अपना चुके हैं। विश्व के अन्य इस्लामी एवं ईसाई देश भी परिवार नियोजन को अपना रहे हैं। ऐसी स्थिति में भारत के मुसलमान और ईसाईयों द्वारा इसका सुनियोजित व्यावहारिक विरोध करने के पीछे यही राजनीतिक उद्देश्य ऊपर आ जाता है कि उनकी जनसंख्या हिन्दू जनता से अनुपात में बढ़ें। यह बात भी देश के अन्दर साम्प्रदायिक कटुता का तथा आपसी शक का मुख्य कारण बन रही है। कोई भी व्यक्ति या समाज आत्महत्या करने के लिए बाध्य नहीं है और यदि मुसलमान और ईसाई समुदाय का यही रूख रहा तो ८८ प्रतिशत हिन्दू समाज परिवार नियोजन को कदापि स्वीकार नहीं करेगा। यदि कोई कार्यक्रम राष्ट्र के सभी व्यक्तियों के हित में है तो देश के सभी नागरिकों को अपनाना पड़ेगा अन्यथा सभी साथ डूबने को बाध्य होंगे।

—साम्प्रदायिक दंगों की संख्या एवं उनकी उग्रता में भारी वृद्धि।

—हाल ही में संगठित रूप से सामूहिक धर्म परिवर्तन। हालांकि इसमें व्यक्तियों की संख्या अधिक नहीं तो भी जिस प्रकार इसके कारण देश व्यापी तनाव हुआ हैं उसने पिछले ३३ वर्षों की साम्प्रदायिक सद्भावना पर पानी फेर दिया है और हिन्दू मुसलमानों के बीच अविश्वास की एक दीवार सी खड़ी हो गयी है।

ऊपर दिये कुछ उदाहरणों से स्पष्ट है कि आज भारत गंभीर विपत्ति काल के ऐसे दौर से गुजर रहा है कि यदि इसका तुरन्त निदान नहीं किया गया तो देश का साम्प्रदायिक हिंसा की भयानक लपेट में चले जाने की आशंका है। उसका अन्त कहां होगा, कोई नहीं जानता। चूंकि यह भविष्य में उनके लिए भी घातक हो सकता है, इसलिए ईसाई एवं मुसलमान समुदायों का पहला कर्तव्य है कि वे इस संगठित धर्म परिवर्तन को तुरन्त बन्द करें। कुछ मुसलमान नेताओं ने इस सामूहिक धर्म-परिवर्तन को भारत की धर्मनिरपेक्षता की नीति के अन्तर्गत सही बतलाया है। ऐसे वक्तव्य सिद्धांततः गलत ही नहीं बल्कि स्वयं मुस्लिम समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं। भारत ने धर्मनिरपेक्षता का जो सिद्धांत अपनाया है उस सिद्धांत का हनन करने के लिए धर्मनिरपेक्षता की आड़ नहीं ली जा सकती। इन मुस्लिम नेताओं को यह नहीं भूलना चाहिये कि यदि हिन्दू समाज ने धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत का सच्चाई एवं दृढ़ता से पालन नहीं किया होता तो १९४७ के विभाजन के बाद शायद उत्तर भारत में मुट्ठी भर ही मुसलमान रह पाते। अधिकांश मुसलमान या तो पाकिस्तान जाने को मजबूर हो जाते या पाकिस्तान में बचे हुए हिन्दुओं की भांति वे धर्मपरिवर्तन कर लेते। इसलिए समाज के अल्प संख्यक वर्गों का धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत का ईमानदारी से पालन करना उन्हीं के हित में है। उन्हें भी भारत में ही रहना है। उनके लिए भारत के बाहर कोई स्थान नहीं है। यही नहीं मुस्लिम समाज की बहुत बड़ी जनसंख्या स्वयं ही आर्थिक एवं सामाजिक रूप से अत्यन्त पीड़ित है। उसकी उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि सारा राष्ट्र अपना ध्यान एवं शक्ति देश के आर्थिक विकास में लगाये जिससे देश की सारी गरीब जनता लाभान्वित हो सके।

हिन्दू समाज का यह कर्तव्य है कि वह अपने को संयम में रखते हुए मुस्लिम समाज के प्रति दुर्भावना न बढ़ने दे, किन्तु इसके साथ ही हिन्दू समाज को सबसे पहला कार्य यह करना है कि वह छुआछूत एवं जात-पांत

को जड़ से समाप्त कर दे और इस धर्म-विरोधी शास्त्र-विरोधी एवं मानवता विरोधी प्रथा को अपने यहां कोई स्थान न दे। कुछ लोगों द्वारा धर्म परिवर्तन की ओर कदम उठाने को हिन्दू समाज की कोई कमजोरी नहीं समझनी चाहिए बल्कि यह उसके अत्यन्त सजीव और चैतन्य होने का प्रमाण है। हिन्दू समाज का दबा हुआ वर्ग इस गलत प्रथा को समाप्त कर देने को व्याकुल है और हमारा कर्तव्य है कि इस कार्य में उनका पूरा साथ दें।

हिन्दू जाति के निम्न कहे जाने वाले सभी लोगों का यह कर्तव्य है कि वे अपने रोष को इस प्रकार प्रकट न करें कि सारा घटनाचक्र एक ऐसा रूप ले ले जिसके परिणाम स्वयं उनके एवं समाज के लिए घातक हो जायें सभी समाज और सभी धर्म अपनी-अपनी विषम समस्याओं में उलझे हुए हैं। इसलिए बाहर की ओर देखने से उनकी समस्या का हल नहीं होगा। उनकी समस्या का तो सीधा और मोटा हल यह है कि उनको जो विशाल अधिकार धर्म, संविधान एवं कानून से मिले हुए हैं उनको वे व्यावहारिक रुप से दिलवाने के लिए कटिबद्ध हो जाय। वे देखेंगे कि हिन्दू समाज का बहुत बड़ा सवर्ण कहा जाने वाला समुदाय कैसे उनके साथ जुटा हुआ है। देश के सभी नागरिकों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे उन राजनीतिक दलों और नेताओं का बहिष्कार कर दें जो अल्पसंख्यकों, धर्म जाति और क्षेत्रीयता के नाम पर वोट मांगते हैं या अपने चुनाव घोषणा पत्रों में इस बात का वादा करते हैं। ऐसे राजनीतिक दलों ओर नेताओं की गिनती राष्ट्रद्रोहियों में होनी चाहिए।

◆

हिन्दू समाज राष्ट्र के हित में अपनी एकता और शक्ति को पहचाने

किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए जो भी आवश्यक त्याग एवं बलिदान करने होते हैं, वे सब उस राष्ट्र के बहुसंख्यक समाज का उत्तर-दायित्व हैं। उसकी रक्षा के लिए जो प्राणों की भेंट देनी होती हैं वह भी उसी का मुख्य कर्तव्य है। भारत में यह उत्तरदायित्व ८८ प्रतिशत संख्या वाले हिन्दू समाज का है। यदि इस उत्तरदायित्व को सुचारू रूप से निभाना है तो हिंदू समाज को अपनी एकता और शक्ति को पहचानना होगा। साधारणतः यह समझा जाता है कि अन्य धर्मों के विपरीत हिन्दू धर्म में इतनी विभिन्नता है कि यह समाज एक सूत्र में नहीं बंध सकता। किन्तु ध्यान से देखें तो हम पायेंगे कि वास्तविकता सर्वथा इसके विपरीत है। हिंदू समाज में होने वाले जितने भी छोटे-बड़े व्यक्तिगत एवं सामाजिक संस्कार हैं उनकी आचार एवं संस्कार–विधि एक ही है। जन्म, विवाह, यज्ञोपवीत एवं मृत्यु इत्यादि से सम्बन्धित तथा श्राद्ध-कर्म, गृह–प्रवेश, वास्तु–पूजन, भूमिपूजन आदि जितने भी कार्य हैं उनमें केरल से लेकर कश्मीर तक सभी भारतवासी एक ही विधि अपनाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न देव मन्दिरों की पूजन विधि तथा आध्यात्मिक उन्नति की पृष्ठभूमि में होने वाली शास्त्र कथाएं एवं तीर्थ स्थान आदि की विधियाँ भी समान हैं। इस में साधारण लोगों को जो भिन्नता दिखाई देती हैं वह इन धार्मिक संस्कारों के साथ जुड़े उत्सवों की विविधता है। हमारे मनीषियों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने सारे धार्मिक संस्कारों को एक पारिवारिक एवं सामाजिक उत्सव का रूप भी दिया और इस तरह एक दृढ़ संगठित समाज एवं राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इस प्रकार, मूलतः संस्कार विधियों से बंधा हुआ विशाल हिन्दू समाज एक अत्यन्त सुगठित तथा एकाग्र समाज है।

हिमालय से कन्याकुमारी तक एक राष्ट्र

दूसरी प्रमुख बात यह है कि हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैले हुए इस विशाल भारत देश में एक राष्ट्र की भावना सदैव ही रही है। इसके शास्त्रीय प्रमाण तो हैं ही, ऐतिहासिक दृष्टि से भी यदि हम देखें तो इस सचाई को अनुभव करगे कि पिछले दो हजार वर्षों में देश के विशाल क्षेत्रों पर विभिन्न साम्राज्यों का सैकड़ों वर्षों तक आधिपत्य रहा है। चोल चालुक्य, पल्लव, परिहार, पाल, परमार जैसे विशाल राज्यों का अपने-अपने क्षेत्रों में सैकड़ों वर्षों तक एक छत्र शासन रहा, किन्तु इन विभिन्न महान राज्यों की भाषा, खान पान, रंग रूप में भारी अन्तर होते हुए भी वहां के लोगों में कभी एक अलग राष्ट्र बनाने की भावना नहीं पैदा हुई जबकि इसके विपरीत यूरोप छोटे-छोटे राष्ट्रों में आज भी विभाजित है। यही नहीं इन सब महान राज्यों के सामने एक चुनौती रहती थी कि वे सारे भारत के चक्रवती सम्राट मान जायें। इस एक राष्ट्र की भावना का अंग्रेजों ने भी एक अवसर पर लाभ उठाया था। १८४० तक अँग्रेजों के पास महाराजा रणजीत सिंह का पँजाब राज्य छोड़कर सारा देश उनके अधीन आ चुका था। महाराजा साहब की मृत्यु के बाद पँजाब को हड़पने के पक्ष में जो तर्क दिये गये थे उनमें से प्रमुख तर्क प्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम ने १८४८ में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में दिया है। उसने लिखा है कि उस समय अंग्रेजों ने भी यह अनुभव किया था कि चूंकि हिन्दुस्तान के निवासी इस सारे देश को एक राष्ट्र मानते हैं तो पंजाब को अंग्रेजों द्वारा जीते जाने को इस नियति का ही एक अंग मानेंगे और इसका कोई विरोध न करेंगे। इस प्रकार भारत की जनता में व्याप्त यह सुदृढ़ राष्ट्रीय भावना ही है जिसके कारण आज तक जात पांत और क्षेत्रीयता के आधार पर चुनाव लड़ने वाली राजनीतिक पार्टियां राष्ट्रीय सम्मान नहीं प्राप्त कर सकीं।

शक्तिशाली हिन्दू समाज

इधर एक ऐसा भ्रामक दूषित प्रचार भी फैला है कि हिन्दू समाज संघर्षरत विदेशी आक्रमणकारियों एवं राष्ट्र विरोधी शक्तियों से लोहा लेने में कमजोरी दिखाता रहा है। इससे बड़ा झूठ शायद ही दूसरा हो। १२ वीं शताब्दी में मोहम्मद गोरी द्वारा रोपित गुलाम वंश के शासन से लेकर १९४७ तक अंग्रेजों के शासन तक यह हिन्दू समाज संघर्षरत ही रहा है। इन सात सौ वर्षों के लम्बे इतिहास में ऐसा कोई समय नहीं रहा जब देश का कोई न कोई भाग विदेशी सत्ता के विरुद्ध युद्धरत न रहा हो। इस युग में इस हिन्दू समाज ने जो अथक बलिदान दिये हैं, जो मर्मान्तिक कष्ट और पीड़ाएं सही हैं, जो अपमान एवं यातनाएं भोगी हैं, उसका शायद विश्व के इतिहास में कोई उदाहरण नहीं है। इससे भी बढ़कर इस घोर विपत्ति के समय में अपने आध्यात्मिक सामाजिक, एवं, छात्र बल के बूते इन सब विपदाओं का निराकरण करते हुए आज यह एक महान राष्ट्र के रूप में विश्व के सामने खड़ा है। शायद यह वर्तमान महान गणराज्य के जन्म की प्रसव पीड़ा थी। शायद विधि का यह निर्देश था कि विदेशी आक्रमणकारियों के हाथों भारत के राजवंशों की परम्परा समाप्त होकर एक महान राष्ट्र का जन्म हो, एक महान गणराज्य स्थापित हो, और यह देश आने वाले सहस्रों वर्षों तक फलता-फूलता रहे। न जाने वह कौन सा युग था जिसमें हमारे पूर्वजों ने इस देश की भूमि को, इसकी नदियों, पर्वतों और वृक्षों तक को इस देश के सभी लोगों के लिए पवित्र एवं गौरवमय बना दिया था। शायद वहीं से हमारी राष्ट्रीय भावना ने जन्म लिया था।

चाणक्य की यह उक्ति है कि एक बड़ा साम्राज्य भी छोटे से छोटे संगठित गणराज्य को नहीं कुचल सकता। भारत के इतिहास में इतने विशाल गणराज्य का यह पहला निर्माण हुआ है। इसकी संगठित शक्ति निश्चय ही विश्व में अदम्य है।

समाजिक सुधार

जहां एक ओर हिन्दू समाज इतने दीर्घकाल तक विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध जन्म मरण के संघर्ष में लगा रह रहा, साथ ही उसने सुधार की उपेक्षा नहीं होने दी। इन सैकड़ों वर्षों में सामाजिक बुराइयां दूर करने के हरेक स्तर पर सतत् प्रयत्न होते रहे जिसके सबसे बड़े प्रतीक महर्षि दयानन्द एवं महात्मा गांधी रहे हैं। इन सबके प्रयत्नों से हिन्दू समाज की अनेकों बुराइयां दूर हुई लेकिन इन दीर्घकालीन प्रयत्नों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही है कि हिन्दू समाज में छुआछूत एवं जातपात के बंधन ढीले पड़ते चले गये और अब समाज इस स्थिति म आ चुका है कि इनका पूरी तरह से निराकरण कर सके। सुधार की इस महान परम्परा को आगे बढ़ाना हिन्दू समाज का सबसे पुनीत कर्त्तव्य है। इसको कार्यान्वित करने के लिये निम्न बातें विचारणीय हैं।

जैसा कि हमने ऊपर कहा, हमारे पिछले सात सौ वर्षों के संघर्षो की प्रसव पीड़ा ने राजतन्त्रों को निर्मूल करके एक महान गणतन्त्र को जन्म दिया उसी गणतन्त्र के अनुरूप अब हिन्दू समाज में भी अनेक वर्ण न होकर एक ही वर्ण के लिए स्थान रह गया है वह वर्ण हैं 'हिन्दू' यदि मध्य युग म सन्तों ने यह निर्देश दिया था कि 'जात-पात पूछे न कोई, हरि को भजै सो हरिका होई' तो हिन्दू समाज के सामने नियति का यह निर्देश है कि 'वर्ण धर्म बूझे न कोई, हिन्दू कहै सो हिन्दू होई।'

हिन्दू समाज में नई लहर

परावर्तन का स्वागत

इधर जो दक्षिण भारत में सामूहिक धर्म परिवर्तन हुआ उसके पश्चात हिन्दू समाज में एक ऐसी अभूतपूर्व घटना घटी है जिसकी ओर अभी लोगों

का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। लगभग एक हजार लोग जो सामूहिक रूप से इस्लाम में गये उनमें से कई सौ सामूहिक रूप से हिंदू धर्म में वापस आगए। यह शायद हिन्दू समाज में पहला अवसर है कि हिन्दू धर्म के धर्माचार्यों ने तथा सारे हिन्दू समाज ने इनके पुनः हिन्दू बनने का मामूहिक रूप से और खुले हृदय से स्वागत किया। अब हिन्दू समाज का कर्त्तव्य है कि वह अपने दरवाजे इसी उदारता से खुले रखे।

★ यदि किसी भी हिन्दू के लिये कोई मन्दिर या तीर्थ या सामाजिक उत्सव अब भी प्रतिबंधित है तो उसका सारे समाज को बहिष्कार करना चाहिए।

★ हिन्दू समाज के सभी व्यक्तियो का यह कर्त्तव्य है कि वह निम्न वर्ग के कहे जाने वाले सभी हिन्दू परिवारों के [जो उनके पड़ोस में रहते हैं या संपर्क में रहते हैं] सुख दुख और पारिवारिक उत्सवों में व्यक्तिगत रूप से शामिल हों और उन्हें भी अपने पारिवारिक उत्सवों में शामिल करें। इससे समाज में अपनत्व, समरसता एवं एकता की भावना बढ़ेगी।

★ यह प्रयत्न होना चाहिए कि नाम के साथ जातिसूचक उपनामन न जोड़े जाएं।

★ हिन्दू समाज के लाखों की संख्या में नित्य विचरण करते हुए जो ाधु–सन्यासी हैं उनका यह धार्मिक एवं सामाजिक दायित्व हैं कि वे अपना अधिकांश समय समाज के छोटे वर्गों के उत्थान में लगाये और उनके बीच में रहें।

सारी दुनिया की दौलत मिले तो भी इस्लाम या ईसाई मत स्वीकार नहीं करूंगा

—डा. भीमराव अम्बेडकर

धर्मपरिवर्तन को ही सारी समस्या का हल बताने वाले लोगों के

सामने यह वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जानी चाहिए किएक और अन्यधर्म मतावलम्बी संकीर्णता, असहिष्णुता एवं पुरानी कट्टरता से ग्रसित, है। दूसरी ओर हिन्दू समाज की उदारता, सार्वभौमिकता एवं विश्व बन्धुत्व की भावना तथा खुले दिल और दिमाग से समायोजिक दोषों को निवारण करने की क्षमता स्पष्ठ है। छुआछूत और जांत पांत की बुराइयाँ शारीरिक रोग के समान हैं जिनका निराकरण किया जा सकता है, किन्तु धर्मान्धता, संकीर्णता इत्यादि दोष ऐसी बीमारियां हैं जो शरीर के स्वस्थ दिखने पर भी उसको विनाश की ओर ले जाती हैं। शायद यही मुख्य कारण कारण रहा होगा जब बाबा साहेब भीवराव अम्बेडकर ने निजाम हैदराबाद की विशाल धनराशि को ठुकरा दिया और कहा था कि उन्हें यदि सारी दुनिया की दौलत भी दे दी जाए तो वह इसलाम या ईसाई मत स्वीकार नहीं करेंगे। इतना ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने होते हुए भी यदि कोई व्यक्ति धर्म परिवर्तन को सामाजिक समस्याओं का हल मानता है तो या तो वह नितात भोला भाला है या वह अपने व्यक्तिगत या राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित है। इसके अतिरिक्त धर्मपरिवर्तन को उकसाने वाला यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो बाहरी शत्रुओं के प्रलोभन में आकर यह जघन्य कार्य कर रहा है तो वह निश्चय ही एक पंचमांगी के समान है और हिन्दू समाज एवं भारत राष्ट्र का शत्रु है। कोई भी समाज एवं देश ऐसे विघटनकारी तत्वों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता।

विश्व तनाव के मूल में ऐतिहासिक शत्रुताएं

विश्व रंग मंच

साधारण मनुष्य शायद बड़े विस्मय से सोचता होगा कि इतनी सम्पत्ति से युक्त विश्व के ये बड़े औद्योगिक देश शस्त्रास्त्रों की होड़ लगाते हुए न केवल अपने देश के जीवन का बल्कि समस्त मानवता को खतरे में क्यों डाल रहे हैं। उतने ही आश्चर्य की बात यह भी लग सकती है कि विश्व के गरीब देश, जहां करोड़ों आदमियों को दो समय रोटी भी नहीं जुटती, अपनी बहुमूल्य बचत का भारी हिस्सा आधुनिक शस्त्रास्त्रों को खरीदने में खर्च कर रहे हैं। इन शंकाओं का समाधान केवल तत्कालिक समस्याओं के विश्लेषण से नहीं मिल सकता। जिस प्रकार एक अहंकार ग्रसित व्यक्ति या परिवार राग और द्वेष आदि के द्वन्द में झूलता हुआ अपनी छोटी-छोटी कामनाओं की पूर्त्ति के लिए, अथवा अपनी संकीर्ण मान्यताओं तथा धर्मान्धता आदि दोषों से ग्रसित होकर पुश्त दर पुश्त की शत्रुताओं का निर्माण करता रहता है, उसी प्रकार देशों और जातियों का भी हाल है। व्यक्ति और परिवार के बैर की शांति या तो एक के विनाश में होती है या फिर दोनों पक्षों के द्वारा सच्चे दिल से एक ऊंची मानसिक और आध्यात्मिक भूमिका पर जाकर होती है। आज दुनिया का इतिहास देखें तो पायेंगे कि सैकड़ों जातियों एवं देशों का इसी बैर भाव के कारण समूल नाश हो चका है। किंतु जातियों एवं देशों में पूर्ण रूप से बैर शांत होकर सद्भावना स्थापित होने का शायद ही कोई उदाहरण हो।

रूस और अमरीका

आज विश्व तनाव के क्षेत्रों की ओर यदि हम दृष्टि डालें तो पायेगे कि

लम्बी ऐतिहासिक शत्रुताओं की कहानी ही वर्तमान समस्याओं का चोला धारण किए है। रूस एवं पश्चिमी यूरोपीय देशों तथा अमरीका की विश्व-व्यापी प्रतिद्वन्दिता का उदाहरण ही लें। साधारणतः यह समझा जाता है कि इनके झगड़े के मूल में दोनों की विपरीत राजनीतिक आर्थिक एवं सामाजिक विचारधाराओं का टकराव है और यूरोपीय क्षेत्रों में इनके विभाजन की रेखा का निर्धारण दूसरे महायुद्ध के बाद आपसी समझौते तथा सीमाओं के वास्तविक नियंत्रण की स्थिति के कारण हुआ। ये दोनों ही बातें ठीक हैं। लेकिन इनकी आपसी शत्रुता और अविश्वास की गहराइयों को यदि हम ठीक से समझें तो तीन अन्य मुख्य ऐतिहासिक बातें इसके पीछे पायेंगे। इनमें पहला मुख्य कारण, रूस की बहुसंख्यक स्लाव जाति एवं पश्चिमी यूरोपीय जातियों (जिसमें वर्तमान अमेरिका के लोग भी शामिल हैं) की आठवीं शताब्दी से चली आ रही भयानक शत्रता है। रोमन साम्राज्य के कमजोर पड़ जाने पर जब पांचवीं, छठी और सातवीं शताब्दियों में पश्चिमी यूरोपीय जातियां राइन नदी को पार करके वर्तमान फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी आदि देशों की ओर बढ़ गई थीं तब उनके स्थान पर पूर्वी जर्मनी, पोलैंड चेकोस्लोवाकिया आदि देशों के क्षेत्रों में स्लाव जाति के लोग बसकर खेती करने लगे। यह क्षेत्र यूरोप के एल्ब और ओडर नदियों के बीच का था। सन् ८२८ ई० में जब इन पश्चिमी यूरोपीय जातियों ने पलटकर इन क्षेत्रों पर पुनः अधिकार जमाया तब उन्होंने जो अमानुषिक अत्याचार स्लाव जाति पर अगले तीन सौ वर्ष तक किए उसकी उपमा विश्व में बहुत कम मिलती है। इन स्लाव लोगों को जबर्दस्ती ईसाई बनाया गया और उनको गुलामों की तरह रखा ही नहीं गया बल्कि उन्हें गुलाम बनाकर स्पेन में अरबों के हाथ भी बेचा जाता था। अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में 'स्लेव' और 'सर्फ' (गुलाम) शब्दों की उत्पति ही स्लाव शब्द से हुई। जातिवाद की यह घृणा आज भी छायी हुई है। न तो पश्चिमी यूरोपीय देश अपनी श्रेष्ठता का अहंकार भूले हैं और न ही स्लाव जाति अपने साथ हुए अपमान और

अत्याचारों का। दूसरा मुख्य कारण दोनों के धर्मों का अन्तर है। जहां एक ओर रूस के लोग ग्रीक आर्थोडाक्स (रुढ़िवादी) ईसाई चर्च के अनुयायी हैं वहीं दूसरी ओर पश्चिमी देशों के लोग कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट मत के हैं। तीसरा मुख्य कारण दोनों विरोधी शक्तियों का रोमन साम्राज्य के उत्तराधिकारी होने का दावा हैं। जब पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी यूरोपीय शक्तियां टुकड़े-टुकड़े होकर एक अंधकारमय युग से गुजर रही थीं उस समय रोमन साम्राज्य की दूसरी राजधानी कुस्तुन्तुनिया का भी जीवन तुर्की के हाथों १४५० ई० के लगभग समाप्त हो चुका था, और सारा तुर्की इस्लाम के पेट में चला गया था। उस समय रूस एक राष्ट्र के रूप में उभर रहा था और शायद अपनी भावी शक्ति को पहचानते हुए उसके शासकों ने मास्को को ईसाई जगत का केन्द्र मानते हुए अपने को तीसरा रोम यानी रोमन साम्राज्य का उत्तराधिकारी समझा था। रूसी राष्ट्रपति ब्रेजनेव ने १९७६ में कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति की बैठक में कहा था कि संसार का ऐसा कोई भी भाग नहीं है जो हमारी विदेश नीति में शामिल नहीं हैं। विदेश मन्त्री आंद्रेई ग्रोमिको का यह कथन कि आज दुनिया में ऐसा कोई सवाल नहीं है जो रूस की इच्छा के विरुद्ध या उसके सहयोग के बिना हल किया जा सके—भी ध्यान देने योग्य है।

आज हर क्षेत्र में इनकी यह उत्तराधिकार की लड़ाई ही मुख्य है। इनकी आपसी प्रतिद्वन्दिता में और भी जहर घोला है पश्चिमी देशों द्वारा रूस पर सवा सौ साल में किए दो भीषण आक्रमणों ने। पहला हमला नेपोलियन के नेतृत्व में हुआ और दूसरा हिटलर के। दोनों ही हमलों में रूस समाप्त होते-होते बचा और अपनी रक्षा के लिए उसने अकथनीय बलिदान किया। इन दोनों आक्रमणों में एक समान बात यह भी थी कि नेपोलियन एवं हिटलर दोनों ने ही रूस पर आक्रमण करने से पहले उसके साथ मिलकर इंग्लैंड के विरुद्ध मोर्चा बनाया। जब इस प्रकार की घोर शत्रुता की दोनों शक्तियों के बीच लम्बी कहानी है तो ऐसी स्थिति में कोई यह कहे कि

अमेरिका और रूस के बीच अणु अस्त्रों को सीमित करने की एक संधि हो जाने से दोनों का वैर कम हो जायगा तो यह अज्ञानता है। जब तक ये दोनों शक्तियां सच्चे दिल से मानवता के उच्च आदर्शों को लक्ष्य बनाकर एक ऊंची मानसिक और आध्यात्मिक भूमिका के स्तर पर नहीं आते तब तक इनकी संधिवार्तायें, सहअस्तित्व के सिद्धांत की बातें, केवल एक दूसरे को वेवकूफ बनाने या परस्पर स्वार्थ सिद्ध तक ही सीमित रहेंगी।

चीन और रूस

विश्व का दूसरा मुख्य तनाव क्षेत्र चीन और रूस की शत्रुता का है, जो कि उनकी विश्वव्यापी प्रतिद्वंता का रूप ले रही है। जब १९४९ में माओत्से तुंग के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी ने पूरे चीन का शासन संभाला था लोग, समझते थे कि चूंकि साम्यवादी धर्म, जाति और राष्ट्र की सीमाओं से ऊपर उठकर शोषित जनता के कल्याण की ही बात सोचते हैं अतः अब रूस और चीन घनिष्ठ मित्रों की तरह से कार्य करेंगे। किन्तु जिन्होंने विश्व इतिहास का बारीकी से अध्ययन किया था वे जानते थे कि इन दोनों देशों की पुरानी शत्रुता की जड़ें गहरी हैं और साम्यवाद भी उनको कभी एक नहीं कर सकता। नतीजा यह हुआ कि दस साल के भीतर ही दोनों का पुराना शत्रु भाव उभर कर दुनिया के सामने आ गया। दोनों देशों में जाति का भेद तो स्पष्ट था ही, साथ ही चीन को सदैव अपनी पुरानी संस्कृति और सभ्तया का भी अभिमान रहा है। पिछली शताब्दी में विभिन्न यूरोपीय शक्तियों से पिटने के पहले तक चीन के बादशाह यूराप के राजाओं को 'जंगली' कहकर संबोधित करते थे किंतु रूस और चीन में सबसे बड़ी झगड़े की जड़ थी पिछली दो शताब्दियों में इनका साम्राज्यवादी विस्तार। इस बीच दोनों के ही पेट में सारा मध्य एशिया का विशाल क्षेत्र बंटकर समाप्त हो गया। अफगानिस्तान और तिब्बत पर भी दो सौ साल से इनकी निगाहे जमी हुई थीं और आज हमारे सामने ही दुनिया के देखते-देखते पहले तिब्बत शस्त्र बल के बूते चीन के कब्जे में चला गया और बाद में अफगा-

निस्तान रूस के। चीन और रूस की सीमाएं लगभग ५ हजार कि० मी है। पिछली शताब्दी में चीन विदेशी मांचू राजवंश के शासन में इतन कमजोर हो चुका था कि उसकी उपमा एक सड़े तरबूज से दी जाती थ जिसे कोई भी साधारण शक्ति का देश अपने चाकू से काट सकता था। चीन को अब यह शिकायत है कि रूस ने उस समय उसकी कमजोरी का लाभ उठाकर सीमा अपने पक्ष में निर्धारित की थी। संक्षेप में इस समय चीन और रूस की शत्रुता अपने पुराने विवादों से बल लेती हुई इस स्थिति में पहुंच चुकी है कि दोनों ही देश सैनिक टकराव की तैयारियों में जोरों से लगे हैं और कहीं भी एक दूसरे को नीचा दिखाने से नहीं चूकते।

दक्षिण पूर्व एशिया वियतनाम (प्राचीन चम्पा हिन्दूराज)

अब हम विश्व के तीसरे मुख्य तनाव क्षेत्र की ओर ध्यान दें। यह क्षेत्र दक्षिण पूर्व एशिया का है जहां अमरीका का मानमर्दन करने वाला वियतनाम अब चीन के विरुद्ध उतनी ही तत्परता से डटा हुआ है इन दोनों साम्यवादी देशों की सीमाएं मिली हुई हैं और वियतनाम युद्ध में अमरीकी हस्तक्षेप के समय चीन ने उसकी काफी मदद की थी और रूस से आने वाली सैनिक सहायता भी चीन होकर ही उसे प्राप्त होती थी। किन्तु जैसे पशु अपने शत्रु को स्वाभाविक रूप से पहचान लेता है वही हाल मनुष्यों और राष्ट्रों का भी है। पिछले दो हजार वर्षों से वियतनाम का यह गौरवपूर्ण इतिहास रहा है कि उसने सफलतापूर्णक चीन के साम्राज्यवादी विस्तार को दक्षिण एशिया की ओर बढ़ने से रोका। ईसवी १५० से लेकर १४७१ तक यह चम्पा नाम से प्रसिद्ध हिन्दू देश था और इसके महान राष्ट्रीय वीरों में पांच राजाओं के नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने १०५० से १२८७ के बीच राज किया। वे राजा हैं परमेश्वर देव, ईश्वरमूर्ति, रुद्र बर्मन, हरि बर्मन, महाराजाधिराज श्री जयइन्द्र बर्मन और जयसिह बर्मन। वियतनाम के अन्तिम दो हिन्दू राजाओं की सबसे बड़ी सफलता यह थी कि उन्होंने चंगेज खां

के पोते और चीन के सम्राट कुबलाई खां की मंगोल और चीनी सेनाओं को बार बार पराजित किया और दक्षिण एशिया की रक्षा की । यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आज़ दक्षिण पूर्व एशिया के पांच 'एसियान' समझौते वाले देश यानी थाईलैंड, मलयेशिया, इंडोनेशिया सिंगापुर और फिलीपीन्स, वियतनाम की इस ऐतिहासिक भूमिका की (जिसे वह आज भी दढ़ता से निभा रहा है) उपेक्षा कर चीन के दाँव पेंच का शिकार हो रहे हैं और वियतनाम का विरोध कर रहे हैं। जब तक चीन अपनी बड़ी सेना के नग्न बल से वियतनाम को सबक सिखाने की बात मन में रख कर किसी न किसी बहाने हमला करता रहेगा तब तक यह असम्भव है कि वियतनाम यह भूल जाय कि चीन का उसके प्रति यह रुख आज का नहीं बल्कि दो हजार वर्ष पुराना है।

ईरान और इराक

आइए, हम अब इस तनाव क्षेत्र की ओर ध्यान दें जहां विश्व का ध्यान पिछले दो साल से लगा हुआ है। ईरान और इराक का युद्ध कोई सीमा सम्बन्धी छोटे-छोटे मामले को लेकर नहीं है जैसा कि इन दोनों के 'प्रचार युद्ध' से भी स्पष्ट होता है। इराक का दावा है कि वह सारे अरब की तरफ से लड़ रहा है और इस बात का दम भरता है कि जिस प्रकार अरबों ने सातवीं शताब्दी में ईरान को एक ही युद्ध में हराकर उसे इस्लामी बना दिया था, सो वह आज भी उसे हराकर सबक सिखाएगा। दूसरी ओर ईरान अपनी प्रचार विज्ञप्तियों में अपनी अति प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की बात करते हुए तथा अरबों से भिन्न ईरान की जातीय श्रेष्ठता की याद दिलाते हुए अपने लोगों को इस बात से प्रोत्साहित करता है कि आज ईरान के उस साम्राज्य को याद करें जिसमें किसी समय सभी अरब देश आ जाते थे। एक बात और याद रखने की है कि ईरान ने तलवार के भय से इस्लाम को स्वीकार किया किन्तु अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता

को अलग रखने के लिए उसे रूढ़िवादी सुन्नी मत को न अपना कर शिया मत को अपनाया । इस प्रकार ईरान—इराक के इस विनाशकारी युद्ध के पीछे जाति भेद, धार्मिक भेद तथा सभ्यता और संस्कृति का टकराव अपने पूरे जोर-शोर से है । इस प्रकार की ऐतिहासिक शत्रुता के अनेक उदाहरण हैं जो आज या तो गौण हैं या अभी पूरी तरह उभरकर सामने नहीं आये हैं जैसे कि जापान और रूस तथा जापान और अमेरिका, जर्मनी और फ्रांस तथा फ्रांस व इटली, स्पेन और इंग्लैंड तथा इंग्लैंड और जर्मनी आदि ।

भारत और पाकिस्तान

१९४७ में अपनी स्थापना के बाद से पाकिस्तान भारत से तीन बार युद्ध कर चुका है और इस समय जिस प्रकार वह अमेरिका तथा अन्य देशों से जो अति आधुनिक अस्त्र-शस्त्र ले रहा है वह वहां के तानाशाहों की नीति के अनुसार, निश्चय ही युद्ध की ओर बढ़ रहा है । साधारणत: यह धारणा है कि यदि कश्मीर की समस्या का हल हो जाए तो पाकिस्तान एक शांतिपूर्ण पड़ोसी की भांति सह—अस्तित्व के सिद्धांत पर भारत के साथ सम्बन्ध बनाने के लिए तैयार हो जाएगा । किन्तु गहराई से देखने पर यह धारणा निर्मूल ही नहीं, अदूरदर्शिता पूर्ण भी लगती है । यदि भारत के प्रति पाकिस्तान के रूख और उसकी भावनाओं को हमें ठीक से समझना है तो हमें उन कारणों को समझना होगा जिनके कारण स्वयं पाकिस्तान का जन्म हुआ तथा कश्मीर आदि की समस्याएं खड़ी हुई । पाकिस्तान भारत को किस भाव से देखता है यह हम उसी के कार्यों एवं विचारों से ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं ।

मोहम्मद बिन कासिम

अभी पिछली १८ जुलाई को सारे पाकिस्तान में मोहम्मद बिन

कासिम दिवस बड़े धूमधाम से मनाया गया, जिसकी पूरी रिपोर्ट रेडियो पाकिस्तान ने प्रसारित की। सारे पाकिस्तान भर में उस दिन सभाएं, गोष्ठियां तथा अन्य कार्यक्रम हुए, जिनमें वहां के राष्ट्रपति से लेकर मुख्य न्यायाधीश तक ने भाग लिया। मोहम्मद बिन कासिम महोत्सव का सारा तत्व यह था कि यह देश का सौभाग्य था कि भारत पर मोहम्मद बिन कासिम ने आक्रमण किया तथा इस्लाम का प्रचार किया और आज उसका अधूरा काम पाकिस्तान को पूरा करना है। यानी पाकिस्तान को भारत में इसलाम के प्रसार के साथ-साथ भारत में विस्तारवाद की भी आकाँक्षा है। इस प्रकार पाकिस्तान में समय-समय पर होने वाले सार्वजनिक कार्यक्रमों तथा पाठ्य पुस्तकों, प्रचार पत्रों एव अन्य प्रसार माध्यमों से वहां की जनता को बताया जाता है कि उनके आदर्श भारत पर आक्रमण करने वाले मोहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनी, मोहम्मद गोरी, बाबर तथा मुस्लिम आक्रमणकारी हैं। दूसरे शब्दों में आज पाकिस्तान स्वयं को गजनी और गोरी जैसे आक्रमणकारियों का उत्तराधिकारी मानता है।

जब पाकिस्तान इस प्रकार उन दुर्दान्त आक्रमणकारियों को अपना आदर्श मानता है तो आज यह समय आ गया है कि हम एक बार संक्षेप में भारत पर हुए इन आक्रमणों का सिहावलोकन करें ताकि पाकिस्तान के जन्म की पृष्ठभूमि को समझ सकें।

ईसवीं ७१२ में सिंध में मोहम्मद बिन कासिम ने भारत पर आक्रमण किया था और उसके बाद उसके अधिकारियों ने भारत के काफी अंदर घुसने का प्रयास किया, किन्तु ई० ७८० तक अरबों को भारत के बाहर खदेड़ दिया गया और वे सिंध के एक कोने तक ही सीमित रह गये थे। इसके बाद के २४० वर्षों तक यानी गजनी के आक्रमण के समय तक कोई भी आक्रमणकारी भारत की सीमाओं में प्रवेश नहीं कर सका। इन २४० वर्षों में देश में इतनीं शांति और चौमुखी प्रगति हुई थी कि उसकी तुलना गुप्त

वंशके स्वर्ण युग से की जाती है। अरब अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी भारत में प्रवेश नहीं कर सके, जब कि वे उस समय ईरान से लेकर स्पेन तक छा चके थे।

हिन्दू शक्ति का जागरण

गजनी के आक्रमण के बाद ११ वीं शताब्दी में इसलाम का पैर पश्चिम भारत में जम गया था। १२ शताब्दी के अन्त में पृथ्वीराज चौहान की हार के बाद से दिल्ली में विदेशी इस्लामी शासकों का राज्य स्थापित हो गया और उसके आस-पास के क्षेत्रों पर वे हावी हो गये। गुलाम वंश तथा उसके बाद में आने वाले खिलजी, तुगलक, सैयद और लोदीवंश के समय तक (खिलजी वंश के २० वर्षो की छोड़ कर) भारत पर किसी संगठित इसलामीं राज्य की स्थापना नहीं हो सकी। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, अकबर के शासन काल में, मुगलवंश ने सारे उत्तर भारत में एक मजबूत साम्राज्य की स्थापना की। देश के इसलामीकरण करने में अपना सबसे बड़ा हाथ मानते हुए औरंगजेब की ई० १७७० में मृत्यु के साथ ही भारत में विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों का मोहम्मद बिन कासिम द्वारा एक हजार वर्ष पहले चलाया गया सिलसिला समाप्त हुआ और देश की हिन्दू शक्ति मराठों, राजपूतों, बुन्देलों, सिखों और जाटों के माध्यम से पूरे भारत में छा गयी। इसके बाद अंग्रेजों ने भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित किया। इस एक हजार साल के आक्रमणों व अत्याचारों के बाद भी देश में लगभग २५ प्रतिशत लोग ही मुसलमान बनाये जा सके थे।

इसके पूर्व कि हम भारत द्वारा एक दूसरी विदेशी सत्ता अर्थात अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष और पाकिस्तान की स्थापना के कारणों की चर्चा क .—हमें एक दृष्टि, भारत के विदेशी मुस्लिम राज एवं सैनिक सत्ता के ४०० वर्षो की अवधि तक डालनी चाहिए। ये ४०० वर्ष तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ

में गुलाम वंश के साथ शुरू होते हैं और १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के साथ समाप्त होते हैं। हिन्दू जाति के लिये यह अमानवीय अत्याचारों, यंत्रणाओं, अपमान एवं घोर निराशा का समय था। इस लम्बी भयप्रद कालरात्रि के मुंह से यह जाति केवल अपने बल पर जीवित ही नहीं रही एक बड़ी शक्ति से युक्ति होकर खड़ी हो गयी यह विश्व इतिहास की एक अनूठी घटना है। अरबों के ४०० साल के शासन से यूरोप का स्पेन देश इसलिए बच सका क्योंकि वह तुर्की की तरह एशिया से नहीं जुड़ा था और उसे यूरोप के अन्य ईसाई देशों से निरन्तर सहायता मिलती रहती थी।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस देश पर इस्लाम की राजनीतिक और सैन्य सत्ता स्थापित हुई उस देश का धर्म, सभ्यता और संस्कृति नष्ट कर दिये गये और समूचे देश को इस्लामी बना दिया गया। हमारे सामने ही आज के बांगला देश [पहले का पूर्वी पाकिस्तान] में विभाजन से पूर्व लगभग एक करोड़ हिन्दू थे और अब करीब २० लाख ही बचे हैं। आज तक वहां के हिन्दुओं का उत्पीड़न और उनका वहां से भागना जारी है। पश्चिमी पाकिस्तान में तो हिन्दू केवल नाममात्र को बचे-खुचे क्षेत्रों में ही केवल कुछ हजार तक सीमित रह गये थे। इसके विपरीत विभाजन के समय भारत में जितने मुसलमान थे आज उस अनुपात से काफी ज्यादा हो गये हैं। यह इस बात का जीता-जागता सबूत है कि यहाँ पर मुसलमान न केवल सुरक्षित हैं बल्कि विकास के समुचित अवसर होने के कारण वे यहां से अपने को जुड़ा हुआ भी अनुभव करते हैं।

४०० साल के दमनकारी विदेशी मुसलमानी शासन के बाद भी हिन्दू जाति या राष्ट्र का बचे रहना इतिहास की एक ऐसी अभूतपूर्व घटना है जिसने प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहास डा० आर्नल्ड टायनबी के विश्व सभ्यताओं के उत्थान और पतन के सिद्धान्तों को गलत साबित कर दिया है। अपने सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए डा. टोयनबी कहीं भी भारत का उदाहरण

नहीं प्रस्तुत कर सके। यह हम सभी जानते हैं कि औरंगजेब की मृत्यु के ६० वर्ष के अंदर, अंग्रेजों की सत्ता स्थापित होने से पूर्व, मुगल राज्य सिमट कर दिल्ली के सौ मील की परिधि में ही रह गया था और मराठे, सिख, राजपूत तथा बुन्देले सम्पूर्ण भारत पर छा गये थे।

इस काल रात्रि से हिन्दू जाति के जावित और समर्थ बचकर निकल आने के मुख्य कारण चार हैं:—

(१) कुछ बचे हुए बड़े हिन्दू राज्यों द्वारा निरंतर संघर्ष एवं उनका अनुपम बलिदान। इनमें प्रमुख थे राजस्थान में मेवाड़, दक्षिण में विजयनगर तथा पूर्व में उड़ीसा। मेवाड़ का दिल्ली और गुजरात के साथ, विजयनगर का पांचों बहमनी शासकों के साथ तथा उड़ीसा का बंगाल तथा हैदराबाद के शासकों के साथ संघर्ष, एक प्रकार का वीरगाथा काल था। असम कभी भी मुस्लिम शासन में नही रहा। हिमालय एवं उसकी तराई के क्षेत्र, घाघरा पार के वर्तमान गोंडा, बहराइच, बस्ती, गोरखपुर तथा चम्बल घाटी के विशाल क्षेत्र कभी मुसलमान शासकों के पूर्ण प्रभाव में नहीं रहे।

(२) देश के हजारों—लाखों संत जिन्होंने जनता को नयी आध्यात्मिक चेतना देकर धीरज और शक्ति दी एवं देश के सुनहरे प्रभात का सपना उनकी आंखों में संजोये रखा।

(३) हिन्दू जाति की अपने धर्म एवं अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता पर घोर आस्था एवं विश्वास जिसके कारण वह असंख्य बलिदान निःसंकोच दे सकी।

(४) विभिन्न मुस्लिम शासकों की आपसी शत्रुता, अंतर्विरोध तथा स्वार्थ, जिनके कारण वे हिदू सैनिकों तथा शासकों की सहायता लेने को

बाध्य हुये तथा अपनी शक्ति क्षीण करते रहे ।

अमानुषिक अत्याचार

इससे पहले हमने भारत पाकिस्तान तनाव के ऐतिहासिक पक्ष पर प्रकाश डालते हुए उन कारणों की चर्चा भी कर चुके हैं जिनके फल स्वरूप हिन्दू धर्म और संस्कृति ५००वर्ष के कठोर विदेशी मुस्लिम शासन में जीवित बच सकी और हिन्दू समाज एक सबल शक्ति के रूप में विश्व के समक्ष पुनः उपस्थित हुआ । किन्तु इन ५०० वर्षों के निरतंर क्रूर अत्याचारों ने हिन्दू समाज के शरीर और मन पर इतने गहरे आघात पहुंचाये कि उसकी हड्डी–हड्डी में एक दर्द तथा नस–नस में पीड़ा सी बैठ गयी। तुर्क, पठान, मुगल, अफगान, इत्यादि शब्द अत्याचार के पर्यायवाची बन गये। उस समय हिन्दू समाज पर हुए इन अत्याचारों के प्रत्यक्षदर्शी प्रमाण इतने हृदयविदारक हैं कि उनका मुकाबला केवल हिटलर जैसे निरंकुश सैनिक तानाशाहों के अत्याचारों से ही किया जा सकता है । बंगाल के सबसे उदारवादी माने जाने वाले सुलतान हुसेन शाह(जो कि चैतन्य महाप्रभु के समकालीन थे)के शासन का अमानवीय दृश्य डा०आर०सी० मजूमदार जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारों ने अपनी पुस्तकों में प्रस्तुत किया है। उसे पढ़कर किसी भी मनुष्य का हृदय दहल उठेगा । इतने उदारवादी मुस्लिम शासक की धार्मिक असहिष्णुता का सबसे जीता—जागता प्रमाण यही है कि चैतन्य महाप्रभु ने अपने सन्यास जीवन के २४ वर्षों में से २० वर्ष बंगाल छोड़कर उड़ीसा में बिताये ।उस युग के संतों ने तो अपनी वाणी में इन अत्याचारों का उल्लेख नहीं किया लेकिन सिख गुरुओं की वाणी में पंजाब में पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए अत्याचारों को खुले तौर से धिक्कारा गया है । 'गुरु ग्रंथ साहिबजी में वर्णित तीसरे गुरू अमर दास जी की कड़कती वाणी बोल उठी:—

"लाहौर सहरु जहरु कहरु सवा पहरु" (पृष्ठ १४१२)

(२४ घंटे कहर बरसाता जहर के समान यह लाहौर नगर है)

स्वयं गुरु नानकदेवजी की यह वाणी ध्यान देने योग्य है:—

'थान मुकाम जले ब्रिज मंदिर मुचि मुचि कुइर रुलाइया" ॥
(पृष्ठ ४१७) ।

यहां पर यह कहना उचित होगा कि ग्रंथ साहिब जी ही मध्य युग का एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें स्पष्ट रूप से हिन्दू शब्द का प्रयोग बार बार आया है और मुस्लिम हिन्दू समाज के जीवन मरण के संघर्ष की एक झलक मिलती है ।

ग्रंथ साहिबजी में ही संकलित संत कबीर की वाणी इस संघर्ष को चुनौती देती हुई स्पष्ट करती है ।

"छांड़ि कतैब राम भजु बउरे, जुलुम करत हैं भारी ।
कबीर पकरी टेक राम की, तुरुक रहे पचिहारी ॥
(पृष्ठ ४७७) ।

और

"सुन्नत किये तुरुकु जो हुइगा, औरत का क्या करिये ।
अरध शरीरी नारि न छोड़े, ताते हिन्दुहि रहिये ।
(पृष्ठ ४७७) ।

ग्रंथ साहिबजी ने बड़े विस्तार से पृष्ठ ११६५—६६ में संत नामदेव जी पर हुए अत्याचार का वर्णन किया है । संत नामदेव जी (जिन्हें ग्रंथ साहिब जी ने नामा नाम से पुकारा है) की गाय मारी जाती हैं और उनसे कहा जाता है कि इसे 'बिस्मिल' कहकर जीवित कर दो नामा कहते हैं कि 'बिस्मल' कहने से गाय जीवित नहीं होगी । नामा को हाथी से कुचल कर मौत की सजा दी जाती है । उनकी मां उनको मुसलमान होने को कहती है

किन्तु नामा इनकार कर देते हैं। नामा हरिकृपा से बच जाते हैं। कुछ घड़ी बाद नामा को गरुड़ पर आसीन भगवान विष्णु के दर्शन होते हैं और उनकी कृपा से नामा गाय को जीवित कर देते हैं इस के बारे में ग्रंथ साहिब जी का एक पद है :—

"करै गजिन्दु सुंड़ की चोट, नामा उबरे हरि की ओट।

काजी मुल्ला करिह सलाम, इनि हिन्दू मेरा मलिआ मान ।।

मानवतावादी हिन्दू स्वभाव

किन्तु हिन्दू जाति ने अपने मानवीय स्वभाव के कारण तथा संतों की अमृतमयी परमार्थ वाणी के प्रभाववश उन गहरे घावों को मुसलमानों के प्रति घृणा का नासूर नहीं बनने दिया। उसने ईसाई और यहूदियों तथा अन्य धर्मों की तरह मुसलमानों के प्रति कोई शत्रुता की बात नहीं रखी। इसका सबसे बड़ा ऐतिहासिक प्रमाण यही है कि मुस्लिम शासन के अंत होने पर और अंग्रेजों के आने के पूर्व के काल में जो विशाल मराठा सिक्ख एवं अन्य हिन्दू राज्य बने उन्होंने मुस्लिम संप्रदाय को पूर्ण सुरक्षा से अपने यहां रखा तथा उनकी धार्मिक भावनाओं का पूरा आदर किया। यही नहीं, उनको शासन एवं सेना में भी उचित स्थान दिया गया। इन हिन्दू राज्यों ने कई ऐसी मुस्लिम रियासतों को पुन: प्रतिष्ठित किया जो मुसलमान शासकों द्वारा समाप्त कर दी गयी थी। अनेक नयी मुस्लिम रियासतें भी उन्होंने बनायीं। इनमें बहावलपुर, भोपाल, बांदा जैसी रियासतें थीं।

इस प्रकार भगवान शंकर के समान साम्प्रदायिकता के इस हलाहल को पीकर हिन्दू समाज ने जब दूसरी विदेशी सत्ता यानी अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय संघर्ष छेड़ा तब मुसलमानों को खुले दिल से इस राष्ट्रकार्य में शामिल होने का आवाहन किया। किन्तु दुर्भाग्य से मुस्लिम समाज का एक

बड़ा अंग अपने वैरभाव और धर्मान्धता को पूरी तौर से नहीं छोड़ सका, जिसका भरपूर लाभ अंग्रेजों ने उसको और बहकाने में लिया। उस पर संकीर्ण विचारों के उन मुस्लिम नेताओं का एकाधिकार हो गया जो उसको किसी भी हालत में भारत की राष्ट्रीय धारा में मिलने देने के विरुद्ध थे। महात्मा गांधी और जवाहरलालजी जैसे देश के अनेक वरिष्ठ नेताओं द्वारा इस दिशा में किये गये सतत प्रयत्न निष्फल हो गये और मुस्लिम समाज के एक बड़े समुदाय ने देश से अपने को अलग कर लिया। इस प्रकार लाखों लाखों की लाशों पर देश के विभाजन से पाकिस्तान की स्थापना हुई।

किन्तु पाकिस्तान ने अपने निर्माता श्री जिन्ना के स्वपनों को भी नहीं पूरा किया। पाकिस्तान बनने से पहले श्री जिन्ना ने स्पष्ट घोषणा की थी कि पाकिस्तान में सब धर्मों और जातियों के लोगों के समान अधिकार रहेंगे। पाकिस्तान की संविधान सभा में दिये गये दिनांक ११ अगस्त, १९४७ के अपने महत्वपूर्ण भाषण में उन्होंने कहा था:—

"धर्म व्यक्ति का निजी मामला है और उससे राज्य का कोई सरोकार नहीं"

मुनीर कमीशन

पाकिस्तान न तो श्री जिन्ना इस घोषणा को पूरा कर सका और न विशुद्ध रूप से एक इस्लामिक देश ही बन सका।१९५३-५४में अहमदियों के विरुद्ध दंगे और अत्याचार शुरू हुए तो उनका अन्त आगे चलकर श्री भुट्टों के समय में उन्हें सरकारी तौर पर गैर मुसलमान घोषित करके हुआ. १९५४ में इन दंगों की छानबीन के लिए पाकिस्तान सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश मुनीर अहमद की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया था। कमीशन ने बड़ी गहराई से वहां तमाम समस्याओं का गहन अध्ययन किया था और मुनीर कमीशन रिपोर्ट आज भी एक प्रमाणित

दस्तावेज माना जाता है। मुनीर कमीशन ने उलमा लोगों से 'मुसलमान' की परिभाषा करने को कहा था। कमीशन ने लिखा है कि कोई भी दो उलम इस आधारभूत नाम की एक सी परिभाषा नहीं दे सके यदि एक उलमा के अनुसार कोई व्यक्ति मुसलमान है तो अन्य सभी उलमाओं के अनुसार काफिर होता है। कमीशन के अनुसार इस्लाम में यह बहुत ही गंभीर बात है, क्योंकि यदि किसी उलमा के अनुसार कोई मुसलमान 'इस्लाम' का अनुयायी नहीं है तो उसकी सही सजा मौत है।

कमीशन के सामने गवाही देने वाले और पाकिस्तान को इस्लामी राज्य बनाने के हिमायती जमायत इस्लामी के नेता मौलाना मौदूदी से पूछा गया कि इसी तरह हिन्दुस्तान अपने का हिन्दू राज घोषित कर दे तो वहां के मुसलमानों की स्थिति के संबंध में उनका क्या कहना है ? इस पर मौलाना साहब ने कहा कि उन्हें इस बात पर क़तई एतराज नहीं है कि भारत मनु के कथनानुसार मुसलमानों को म्लेच्छ माने और उन्हें सभी राज्यकीय अधिकारों से वंचित कर दे। हम सभी जानते हैं कि भारत ने ऐसा करने की कभी कल्पना भी नहीं की और भारत में रहने वाले मुसलमानों को विधान के अन्तर्गत समान अधिकार ही दिया। किन्तु जैसे बरसाती हवा से कभी कभी हड्डियों का पुराना दर्द टीसें मारने लगता है उसी प्रकार जब पाकिस्तान अपने को गोरी और गजनी का उत्तराधिकारी मानकर भारत के विरुद्ध जेहाद की आवाज उठाने लगता है या भुट्टो की भांति एक हजार साल के युद्ध का नारा लगाता है या फिर भारत में रहने वाले कुछ मुस्लिम नेता अपने लोगों को गुमराह करने के लिए मुसलमानों के लिए नौकरियों में आरक्षण और उर्दू के लिए राजभाषा का दर्जा जैसी अलगाव की मांगें उठाते हैं, तब स्वाभाविक है कि यह विशाल हिन्दू समाज जिस पर मुख्यतः राष्ट्ररक्षा का भार है, सशंकित हो उठे।

क्या पाकिस्तान आज एक क्षण के लिए भी स्वीकार करेगा कि जिन

कट्टर इस्लामी देशों से मोहम्मद बिन कासिम, गोरी, गजनी, बाबर और नादिरशाह आये थे, वहाँ के धार्मिक नेता उससे यह कहें कि पाकिस्तान इस्लाम का सही पालन नहीं कर रहा है और फिर उसको सही धर्म सिखाने के बहाने उस पर आक्रमण करें। तो क्या ऐसी स्थिति में वह उस समय यह नहीं भुला देगा कि ये आक्रमणकारी सेनायें उन देशों से आई हुई हैं जिनके भारत पर आक्रमणकारी पुरखों को वह अपना आदर्श मानता है और क्या वह पूरी ताकत से उनका मुकाबला नहीं करेगा ? आज क्यों पाकिस्तान अफगानिस्तान से आये हुए२० लाख पठान मुसलमानों को वापस भेजने को आतुर है और रूस से चुपचाप संधि करने की चालें चल रहा है ? यदि पाकिस्तान को धर्म इतना ही प्यारा है तो क्यों वह बांगला देश में फंसे लगभग ७० हजार गैर पंजाबी, यू. पी. और बिहार से गये मुसलमानों को बसाने से साफ इनकार कर रहा है ? बात बड़ी साफ है कि धर्म और भारत से प्रतिकूलता के अतिरिक्त आज पाकिस्तान में राष्ट्रीय भावना का कोई मजबूत आधार नहीं है। यही कारण है कि वहां के सैनिक तानाशाह भारत के साथ धर्म के नाम पर और वहां के लोगों में भारत का एक हौवा खड़ा करके कुछ साम्राज्यवादी ताकतों के बूते पर इस देश के साथ हमेशा तनाव की स्थिति बनाये रखना चाहते हैं। वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि जिस दिन भारत के साथ यह तनाव समाप्त होगा तो पाकिस्तान की पीड़ित जनता उनसे हिसाब मांगेंगी और तब उनकी सत्ता क्षणभर के लिए भी नहीं टिक सकेगी।

अपने को गोरी और गजनी के उत्तराधिकारी मानने वाले पाकिस्तान के तानाशाहों का यह सौभाग्य है कि आज भारतवर्ष पृथ्वीराज का उत्तराधिकारी नहीं है। भारत एक विशाल गणतन्त्र के रूप में सारी भारत की जनता का विराट स्वरूप है।

इधर कुछ वर्षों से इस्लामी देशों एवं उनकी नयी शक्ति की चर्चा

विश्व भर में हो रही है। इसके ४ मुख्य कारण हैं— (१) पिछले आठ वर्षों में तेल के मूल्यों में १२ से १५ गुना वृद्धि, जिसके कारण तेल उत्पादक देशों की वार्षिक आय में १५०० अरब रुपयों की अतिरिक्त वृद्धि हुई है (२) तेल की शक्ति का राजनीतिक दृष्टि से संगठित उपयोग, विशेषकर इजरायल के मामलों में (३) इन तेल उत्पादक देशों द्वारा अतिरिक्त विशाल धनराशि का भारी मात्रा में आधुनिकतम शस्त्रों की खरीद में उपयोग (४) ईरान में खुमैनी के हाथों शाह के पतन के बाद कट्टर इस्लामी राज्य की स्थापना। इन सबका ही यह परिणाम है कि आज लीबिया के शासक कर्नल गद्दाफी विश्व के बड़े से बड़े मामले में हस्तक्षेप करने का अपना अधिकार मानते हैं और यही कारण है कि ईरान के आयतुल्लाह खुमैनी विश्व की सभी शक्तियों को ललकारने में नहीं चूकते तथा पाकिस्तान के सैनिक तानाशाह श्री जियाउलहक ने अब जनता में आम चुनाव कराने के अपने वादे को बिलकुल ही भुला दिया है और अपना लम्बा सैनिक शासन जमाने की कोशिश में है।

इस्लामी देश

किन्तु यह सभी के हित में होगा कि हम वस्तु स्थिति को समझें और उसको सच्चाई की कसौटी पर कसें ताकि गलत धारणाओं के प्रभाव में गलत कदम न उठें। पहले हम स्वयं इन लगभग तीन दर्जन इस्लामी देशों की स्थिति की ओर दृष्टिपात करें। औद्योगिक, आर्थिक, कृषि एवं विज्ञान की दृष्टि से यह सभी देश आज दुनिया में बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि आज लीबिया जैसे छोटे से किन्तु तेल के कारण संपन्न देश में पश्चिम योरोप के चार लाख सत्तर हजार लोग काम कर रहे हैं। वहां की श्रमशक्ति में तकनीकी काम करने वाले विदेशियों की संख्या आधी है। इसी प्रकार की स्थिति ईरान इराक आदि देशों की भी है। इनमें से कोई भी ऐसा देश नहीं है जो कि औद्योगिक दृष्टि से

आज विकसित स्तर पर माना जा सके। राजनीतिक दृष्टि से, जातिगत धार्मिक एवं राष्ट्रीय भेदभाव तथा अन्य ऐतिहासिक कारणों से अधिकतर इस्लामी देश आपस में ही घोर शत्रुता का व्यवहार एक दूसरे के प्रति कर रहे हैं। यह आपसी शत्रुता कितनी गहरी है इसका उदाहरण दुनिया के सामने तब आया जब इसरायल द्वारा इराक के परमाणु बिजलीघर को जून में ध्वस्त करने के बाद इस्लामी देशों द्वारा बुलाये गये शिखर सम्मेलन में अनेक प्रमुख मुस्लिम देशों ने भाग नहीं लिया।

इन देशों को तेल से प्राप्त आय का लगभग ९० प्रतिशत भाग पिछले वर्षों में अनुत्पादक मदों पर ही खर्च हुआ है। धन का मुख्य व्यय या तो शास्त्रों की खरीदने में या वहां की अपनी ही प्रजा से भयभीत शासकों द्वारा अमरीका तथा अन्य पश्चिमी देशों में जमा करने में हुआ। आज अरब के नेता अपनी प्रजा से कितने भयभीत हैं इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि सऊदी अरब के शासकों ने अपनी रक्षा के लिए तथा अपने खर्च पर २० हजार पाकिस्तानी सैनिक रखे हुए हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि अथाह सम्पत्ति के प्रवाह तथा नये धार्मिक जोश के बावजूद भी इस्लामी देश अपनी जनता के कल्याण के लिए उसका कोई उचित लाभ नहीं उठा पाये और न ही विश्व में राजनीतिक दृष्टि से अपनी सामूहिक स्थिति मजबूत कर पाये है।

अब हम जरा विश्व के अन्य धर्मों की ओर दृष्टिपात करें। यह बात निर्विवाद है कि आज ईसाई देश आर्थिक एवं सैन्य दृष्टि से दुनिया में सबसे आगे हैं और यह भी सत्य है कि विश्व के लगभग सभी इस्लामी देश आर्थिक एवं सैनिक दृष्टि से इन्ही पर बुरी तरह से निर्भर हैं। सबसे विडम्बना की बात तो यह है कि आज जिस इसरायल देश को ये इस्लामी देश अपना सबसे बड़ा शत्रु मानते हैं उसकी स्थापना इन्ही पश्चिमी देशों ने की और उन्ही की सहायता से इसरायल न केवल जी रहा है बल्कि

पश्चिमी एशिया के अरब देशों को सभी दृष्टि से भारी चोटें पहुंचा रहा है। इतना सब होते हुए भी अपनी जनता के भय से, रूस के भय से तथा अपने स्वार्थवश सब कुछ भूलकर ये देश अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देशों का पल्ला पकड़े हुए हैं। आश्चर्य की बात है कि यदि मिस्र ने वास्तविकता के आधार पर इसरायल से संधि कर ली तो सभी अरब देशों ने उसका बहिष्कार कर दिया जबकि उनमें से अनेक प्रमुख देश स्वयं इसरायल के संरक्षक अमरीका की शरण में बैठे हैं। दूसरी ओर रूस से हथियार लेने वाले सीरिया इराक और लीबिया भी इसी रास्ते पर चल रहे हैं। तेल की ताकत के मद में यह अरब देश भूल जाते हैं कि जितने मूल्य का वह तेल निर्यात करते हैं उतने मूल्य का तो अमेरिका तथा अन्य यूरोपीय देश विश्व को अनाज एवं अस्त्र शस्त्र ही बेच लेते हैं। उनका तो इस समय केवल एक खेल है कि इन धनवान इस्लामी देशों को खूब शस्त्रास्त्र बेचो और फिर इन्हें आपस में लड़ाते रहो ताकि आगे और भी शस्त्रास्त्र बेच सको।

निरीश्वरवादी रूस

अब हम दुनिया की दूसरी महाशक्ति निरीश्वरवादी रूस को लें जहां पर राज्य की दष्टि में धर्म का कोई महत्व नहीं है। इस महाशक्ति ने दुनिया के देखते-देखते ढाई लाख वर्ग मील क्षेत्र तथा एक करोड़ अस्सी लाख की आबादी वाले विशाल अफगानिस्तान को अपने पेट में उसी प्रकार समा लिया जिस प्रकार कोई विशाल भालू शहद के पूरे छत्ते को मक्खियों की भिनभिनाहट के बावजूद अपने पेट में रख लेता है। आज इस रूसी भालू के पंजों की चुभन ईरान एवं पाकिस्तान को भी महसूस हो रही है। रूस का यह इतिहास रहा है कि जो उसके पेट में गया वह वापिस नहीं निकला। रूस में पहले से ही साढ़े चार करोड़ मुसलमान रहते हैं। जब कभी रूस को अपने राष्ट्रीय रक्षा के मामले में किसी प्रकार भी संदेह हुआ तो उसने उनको कभी नहीं बख्शा। दूसरे महायुद्ध के समय जब स्टालिन को यह लगा

कि रूस के मुसलमान अनेक इस्लामी देशों के मुसलमानों की तरह हिटलर के साथ सहानुभूति रखते हैं तो उसने वेदर्दी से लाखों मुसलमानों को दक्षिण रूस से विस्थापित कर हजारों मील दूर साइवेरिया की भयानक ठंड में बर्बाद होने को भेज दिया। आज भी साइवेरिया में पड़े पांच लाख मुसलमानों को वापिस लौटने की अनुमति नहीं मिली है और यह मामला विश्व के कई संस्थानों के सामने उठाया जा रहा है। रूसी साम्राज्य के मुख्य निर्माता बादशाह पीटर महान ने १८ वीं शताब्दी के शुरू में अपने वसीयतनामें में रूसियों को निर्देश दिया था "जहां तक बने भारत और इस्ताम्बुल की सीमा तक पहुंच जाओ और जब ईरान कमजोर पड़े तो उसको भेदते हुए फारस की खाड़ी तक जा पहुंचो"। लगता है कि आज का रूस पीटर के वसीयतनामों के निर्देश को अमली जामा पहना रहा है।

यहां पर यह कहना समीचीन होगा कि इससे पूर्व इस्लामी देशों पर सबसे बड़ी विपदा बारहवीं सदी के अन्त में अनीश्वरवादी मंगोलों की ओर से ही आयी थी जो उस समय चीन से लेकर रूस तक छा गये थे। चंगेज खां (जो कि मुसलमान नहीं था) के मरने के दो पुश्तों के बाद मंगोल चीन में बौद्ध, रूस में ईसाई, तथा इस्लामी देशों में मुसलमान बन गये।

बौद्ध धर्मानुयायी चीन जापान आदि देश

आइये अब हम बौद्ध धर्म की ओर दृष्टि डालें जिनके प्रमुख देश चीन, जापान, वियतनाम, कोरिया इत्यादि आज विश्व की प्रमुख शक्तियां हैं। यदि जापान, रूस और अमरीका की तरह, अपने को शस्त्रों से लैस कर ले तो बौद्ध देशों की शक्ति विश्व में शायद प्रथम स्थान पर आ जाय। चीन में करोड़ों की संख्या में मुसलमान है किन्तु वहां के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में उनका स्थान नगण्य है। बड़ें आश्चर्य की बात है कि अपने को इस्लामी जगत का नेता मानने वाले पाकिस्तान ने आज तक अपने

मित्र चीन से वहां के मुसलमान नागरिकों की दुर्दशा के बारे में कभी पूछताछ नहीं की।

विश्व की प्राचीनतम सभ्यता संस्कृति वाला देश भारत

अब हम अपने देश भारत के विशाल गणतन्त्र की ओर दृष्टि डालें जो विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता एवं संस्कृति के साथ लगभग ६० करोड़ हिन्दू समाज को अपने में संजोये हुए हैं। विश्वविख्यात गोरखा सैनिकों के हिन्दू देश नेपाल से पीठ टिकाए भारत की गणना दुनिया में औद्योगिक शक्ति के रूप में आठव, और सैनिक शक्ति के रूप में चौथे नंबर पर होती है। किन्तु भारत में और दुनिया के इस्लामी, ईसाई और बौद्ध देशों में एक बढ़ा भारी अन्तर है। जहां भारत ने सच्चे दिल से अपने विधान में ही नहीं बल्कि व्यवहार में भी धर्म, जाति एवं रंगभेद से ऊपर उठकर सभी नागरिकों को समानता प्रदान की है वहां अन्य देशों में ऐसा नहीं है। या तो उन देशों में अल्पसंख्यक नाममात्र को हैं और यदि हैं तो उनको समानता के अधिकार नहीं प्राप्त हैं। और यदि कुछ देशों में कागज पर ये अधिकार प्राप्त हैं तो व्यवहार में कतई नहीं। क्या आज हम यह कल्पना कर सकते हैं कि १६ प्रतिशत ईसाई आबादी वाले मिस्र देश में या १६ प्रतिशत मुसलमान आबादी वाले रूस में वहां के उच्च प्रशासनिक एवं सैनिक पद ईसाई या मुसलमानों को मिल सकेंगे? क्या ईसाई प्रधान यूरोपीय या अमरीकी देशों में गैर ईसाई व्यक्ति कभी ऐसे उच्च स्थान प्राप्त कर सकेंगे?

अखण्ड राष्ट्रीयता का सिद्धाँत

आज आवश्यकता इस बात की है कि अपने राज्य की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति में केवल दोष देखने के बजाय इस महान गणतन्त्र द्वारा प्रदत्त समानता के इस महत्व को हम समझें और इसकी जड़ों को मजबूत

करें। इसके लिए यह आवश्यक है कि देश के सभी धर्मों के लोग राजनीति के इस अटल सिद्धांत को मानें कि एक राष्ट्र में कई धर्म रह सकते हैं तथा एक धर्म मानने वालों के कई राष्ट्र होते हैं, किन्तु एक राष्ट्र में दो राष्ट्र या सभ्यतायें नहीं रह सकतीं। किसी देश के अल्पसंख्यक समुदाय को यदि अलग सामाजिक कानून, सरकारी भाषा तथा नौकरियों का आरक्षण प्राप्त है तो यह निश्चय ही समझ लेना चाहिये कि वह राष्ट्र कभी भी अखण्ड नहीं रह सकता, इस प्रकार के विश्व में कई उदाहरण हैं। लेबनान में जहां ऐसा रहा है उसकी श्मशानवत् दशा आज हमारे सामने है और वहाँ निरन्तर आपस में लड़ने वाले ईसाई और मुसममानों ने देश का व्यवहारिक रूप से विभाजन कर लिया है। कनाडा भी इसी जाल में फ़ंसा हुआ है और विभाजन के झोंके उस पर भी आते रहते हैं।

आरक्षण' उर्दू, अलग सामाजिक कानून के गंभीर परिणाम

हम स्वयं अपनी आंखों से यह देख रहे है कि केवल सामाजिक कानून अलग रखने के कारण इस देश का मुसलमान समाज़ सहज रूप से राष्ट्रीय धारा में मिलने से वंचित ही रहा है। दुनिया में भाषा की दीवाल बड़ी मजबूत होती है। इसकी मजबूती का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि भाषा के सवाल को ही लेकर पाकिस्तान दो हिस्सों में बंट गया है। यही नहीं पाकिस्तान में भी आज उर्दू के स्थान पर क्षेत्रीय बोलियां अर्थात पंजाबी, सिन्धी, पश्तो इत्यादि व्यवहार में अधिक प्रभावशाली होती जा रही हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वहां आज ९० प्रतिशत फिल्में पंजाबी में बन रही हैं और उर्दू फिल्मों को देखने वाले काफी घट गये हैं। आज देश विभाजन एवं अलगाव की प्रवृत्तियों से संबंधित यदि राजनीतिक चालों के कारण उर्दू को शासन की दूसरी भाषा का रूप दिया गया तो यह निश्चित है कि अलग सामाजिक कानून के साथ उर्दू भाषा मिलकर मुस्लिम समाज को राष्ट्रधारा से और भी दूर ले जायेगी। यह

बात आंख खोलने वाली हैं कि पढ़े-लिखे मुस्लिम घरों एवं दुकानों पर नामों की तख्तियां और साइनबोर्ड केवल अंग्रेजी और उर्दू में ही लिखे जाते हैं तथा उर्दू अखबार दैनिक प्रयोग के हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा के शब्दों के बजाय अंग्रेजी या अरबी के शब्दों का प्रयोग करते हैं। आज यदि उर्दू के नाम पर हिन्दी के प्रति जो कि राष्ट्रभाषा ही नहीं बल्कि हिन्दी राज्यों की अपनी मातृभाषा है इतनी बड़ी उपेक्षा है तो आगे चलकर इसके गंभीर प्ररिणाम क्या होंगे इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता हैं। जहां तक अल्पसंख्यकों के नाम पर सरकारी नौकरियों में आरक्षण की मांग है उसके बारे में इतना ही कहना काफी है कि आज ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारणों से परिगणित एवं अन्य जातियों को जो आरक्षण दिया गया है वह केवल एक अवधि के लिए ही है। इसलिए मुसलमानों के गुमराह नेता एवं स्वार्थी राजनीनिक दलों द्वारा इस प्रकार की मांग को बढ़ावा देना एक ऐसा राष्ट्र विरोधी कार्य है जो देश की जनता कभी बर्दाश्त नहीं करेगी।

अनिवार्य मतदान

इस प्रकार यदि इन राष्ट्रविरोधी कार्यों से निपटना है तो सबसे प्रभावशाली मार्ग यह होगा कि देश में मतदान को सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य कर दिया जाय और इसके लिए आवश्यक हो तो कानून एवं संविधान में संशोधन भी किया जाय। अनिवार्य मतदान का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि राजनीतिक दलों द्वारा न तो अल्पसंख्यक समुदाय और न जातिवाद के ही नाम पर वोटों की सौदेबाजी का महत्व रह जायेगा और न अल्पसंख्यक ही राजनीतिक दलों पर बेजा दबाव डाल सकेंगे। इसका दूसरा बड़ा लाभ यह होगा कि चुनाव में होने वाले खर्च और भ्रष्टाचार दोनों को कम किया जा सकेगा।

आज जब सारा विश्व आपस में पुरानी शत्रुता द्वेष एवं प्रतिस्पर्धा में

लगा हुआ है वहां भारत ने ऐतिहासिक शत्रुता को भुलाकर अपने आध्यात्मिक समता के ज्ञान को आज राजनीतिक और सामाजिक धरातल पर उतारा है। यह अपने में बेमिसाल तथा विश्व के लिए अनुकरणीय बात है। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत की उदारवादी तथा सहनशीलता की नीति के कारण केवल पाकिस्तान को छोड़कर सभी इस्लामी देशों से उसका अच्छा सांस्कृतिक, राजनयिक, औद्योगिक तथा अन्य सभी तरह का सहयोग व मित्रता बनी हुई है। इनमें से प्रमुख देश जैसे ईराक, लीबिया, ईरान, मिस्र, खाड़ी देशों के साथ अरबों रुपयों का कारोबार है।

केवल पाकिस्तान ही एक ऐसा देश है जो भारत से शत्रुता की गांठ बांधे हुए हैं। किन्तु भारत के मुसलमानों को यह नहीं भूलना चाहिये कि राष्ट्रीयता जाति संस्कृति और सभ्यता की विरासत समान धर्म से कहीं अधिक मजबूत होती है। इस्लामी देशों के निरंतर चलने वाले आपसी युद्ध इस बात के जीते जागते सबूत हैं। आज जब ईरान के नेता समान आर्य जाति एवं उसकी संस्कृति के नाम पर भारत से सहायता मांग सकते है, तो भारत के मुसलमानों की तो यह अपनी ही धरोहर है, अपनी ही थाती है, जिसकी उन्हें जी–जान से उसी तरह रक्षा करनी है जैसे हिन्दू समाज को।

धर्म निरपेक्षता का लाभ

सभी अल्पसंख्यक समुदायों को ग्रीस के महान दार्शनिक एवं राजनीतिज्ञ प्लेटों के इस कथन को हमेशा ध्यान में रखना होगा कि "किसी व्यक्ति के लिए सबसे अधिक निकटता का संबंध अपने देश के सिवा और क्या हो सकता है"। आज दुनिया के अन्य देशों में धर्म, जाति और रंग के नाम पर पीड़ित अल्प संख्यक वर्गों की एक यही कामना है कि यदि उन्हें उनका देश समान अधिकार दे तो वे उस पर अपना सब कुछ निछावर कर दें। समान अधिकार देना तो दूर रहा इंगलैन्ड जैसा प्रजातांत्रिक देश भी जहां अपने अल्पसंख्यकों के अधिकार कानूनी रूप से सीमित करने में लगा

हुआ हैं वहां भारत ने अपने प्रति हुई सारी पुरानी शत्रुताओं से ऊपर उठते हुए देश के अल्प संख्यकों, चाहे वे ईसाई हों या मुसलमान, सभी को लिखित एवं व्यवहारिक रूप से समान अधिकार दे रखा है। इतिहास का ऊंट किस करवट बैठेगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि अल्पसंख्यक अपने को राष्ट्रीय भावना के साथ कितना आत्मसात होते हैं। किन्तु यह बात निश्चित है कि अल्पसंख्यक समुदाय एक ओर धर्मनिरपेक्षता का लाभ उठाएं और दूसरी ओर अपनी विशेष स्थिति बनाये रखना चाहें यह संभव नहीं है।

विश्व हिन्दू परिषद्
धर्मो रक्षति रक्षितः

इस पुस्तक में पढ़ें

आज कोई भी संगठित रूप से बाहरी धन के बूते न तो ईसाई देशों में और न ही साम्यवादी या इस्लामी देशों में धर्म परिवर्तन कराने की सोच सकता है। यही स्थिति बौद्ध धर्म के अनुयायी चीन, जापान एवं हिन्द चीन के देशों पर भी लागू होती है। अब बचा केवल भारत जिस की उदार धर्म निरपेक्ष नीति का अन्य देशों तथा धर्मों ने पूरा लाभ उठाने में कोई कसर नहीं उठा रखी है। मानो भारत कोई एक राष्ट्र न होकर खुली धर्मशाला है।

राजनीतिक दृष्टि से धर्म परिवर्तन के या विदेशी मुफ्त के धन के खर्च के तीन मुख्य उद्देश्य होते हैं :

● अपने पिट्ठुओं की संख्या बढ़ाना

● कुछ पंचमांगियों का निर्माण करना तथा

● आवश्यकता पड़ने पर राजनीतिक उद्देश्य पूर्ति के लिए छापामार युद्ध छेड़ने की क्षमता बनाना। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नागा लैण्ड एवं मिजोरम के रूप में हमारे सामने है।

हुआ हैं वहां भारत ने अपने प्रति हुई सारी पुरानी शत्रुताओं से ऊपर उठते हुए देश के अल्प संख्यकों, चाहे वे ईसाई हों या मुसलमान, सभी को लिखित एवं व्यवहारिक रूप से समान अधिकार दे रखा है। इतिहास वा ऊंट किस करवट बैठेगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि अल्पसंख्यक अपने को राष्ट्रीय भोवना के साथ कितना आत्मसात होते हैं। किन्तु यह बात निश्चित है कि अल्पसंख्यक समुदाय एक ओर धर्मनिरपेक्षता का लाभ उठाएं और दूसरी ओर अपनी विशेष स्थिति बनाये रखना चाहें यह संभव नहीं है।

विश्व हिन्दू परिषद्

धर्मो रक्षति रक्षितः

इस पुस्तक में पढ़ें

आज कोई भी संगठित रूप से बाहरी धन के बूते न तो ईसाई देशों में और न ही साम्यवादी या इस्लामी देशों में धर्म परिवर्तन कराने की सोच सकता है । यही स्थिति बौद्ध धर्म के अनुयायी चीन, जापान एवं हिन्द चीन के देशों पर भी लागू होती है । अब बचा केवल भारत जिस की उदार धर्म निरपेक्ष नीति का अन्य देशों तथा धर्मों ने पूरा लाभ उठाने में कोई कसर नहीं उठा रखी है । मानो भारत कोई एक राष्ट्र न होकर खुली धर्मशाला है ।

राजनीतिक दृष्टि से धर्म परिवर्तन के या विदेशी मुफ्त के धन के खर्च के तीन मुख्य उद्देश्य होते हैं :

- अपने पिट्ठुओं की संख्या बढ़ाना
- कुछ पंचमांगियों का निर्माण करना तथा
- आवश्यकता पड़ने पर राजनीतिक उद्देश्य पूर्ति के लिए छांपामार युद्ध छेड़ने की क्षमता बनाना । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नागा लैण्ड एवं मिजोरम के रूप में हमारे सामने है ।

इस पुस्तक में पढ़ें

हिन्दू समाज के सम्बन्ध में एक भारी भ्रम व्याप्त है कि शुद्र को शासन एवं सामाजिक कार्यों में कभी समान अधिकार नहीं दिया गया । सत्य तो इसके विपरीत है। महाभारत के शान्ति पर्व' में मंत्रि परिषद के गठन की व्यवस्था बड़े स्पष्ट रूप से दी गयी है। इसमें पितामह भीष्म के अनुसार मंत्रियों की संख्या ३७ होनी चाहिए जिसमें ४ ब्राह्मण, ४ शूद्र, ८ क्षत्रिय और २१ वैश्य होने चाहिए। वैश्यों की इतनी अधिक संख्या संभवत: इसलिए थी कि उस समय कृषि, उद्योग एवं व्यापार काफी उन्नत अवस्था में थे। ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि ब्राह्मण और शूद्रों की संख्या एक समान रखी गयी थी।

सभी हिन्दू गर्व से यह स्मरण करते रहेंगे कि महाराज दशरथ के अत्यन्त विश्वास पात्र मंत्री एवं प्रिय सखा तथा भगवान श्रीराम एवं सीताजी के लिए दशरथ जी के ही तुल्य आदरणीय 'सुमन्त जी' शुद्र ही थे।

विश्व हिन्दू परिषद प्रकाशन

इस पुस्तक में पढ़ें

हिन्दू समाज के सम्बन्ध में एक भारी भ्रम व्याप्त है कि शुद्र को शासन एवं सामाजिक कार्यों में कभी समान अधिकार नहीं दिया गया । सत्य तो इसके विपरीत है । महाभारत के शान्ति पर्व' में मंत्रि परिषद के गठन की व्यवस्था बड़े स्पष्ट रूप से दी गयी है । इसमें पितामह भीष्म के अनुसार मंत्रियों की संख्या ३७ होनी चाहिए जिसमें ४ ब्राह्मण, ४ शूद्र, ८ क्षत्रिय और २१ वैश्य होने चाहिए । वैश्यों की इतनी अधिक संख्या संभवत: इसलिए थी कि उस समय कृषि, उद्योग एवं व्यापार काफी उन्नत अवस्था में थे । ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि ब्राह्मण और शूद्रों की संख्या एक समान रखी गयी थी ।

सभी हिन्दू गर्व से यह स्मरण करते रहेंगे कि महाराज दशरथ के अत्यन्त विश्वास पात्र मंत्री एवं प्रिय सखा तथा भगवान श्रीराम एवं सीताजी के लिए दशरथ जी के ही तुल्य आदरणीय 'सुमन्त जी' शुद्र ही थे ।

विश्व हिन्दू परिषद प्रकाशन